प्रकाशक :

देवेन्द्रराज मेहता
सचिव, प्राकृत भारती अकादमी
जयपुर

☐

द्वितीय संस्करण : 1987

☐

मूल्य : सजिल्द २५.००; अजिल्द १८.००

☐

☐

प्राप्ति-स्थान :

प्राकृत भारती अकादमी
3826, यति श्यामलालजी का उपाश्रय
मोतीसिंह भोमियों का रास्ता
जयपुर–302003 (राजस्थान)

☐

एम. एल. प्रिण्टर्स, जोधपुर

Ācharāṅga Chayamikā/Philosophy
Kamal Chand Sogani/Udaipur/1987.

अहिंसा-समता
के
माध्यम
से
जन-जन को जगाने वाले
आचार्यों
को
सादर समर्पित

अनुक्रमणिका

—o—

प्रकाशकीय

प्राकृत भारती अकादमी के 23 वें पुष्प के रूप में 'आचारांग-चयनिका' का द्वितीय संस्करण पाठकों के कर-कमलों में समर्पित करते हुए प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। प्राकृत भाषा में रचित आगम-साहित्य विशाल है। भारतीय जन-जीवन और संस्कृति के प्रवाह को समझने के लिए इसका अध्ययन महत्त्वपूर्ण है। अहिंसा और समता के आधार पर व्यक्ति और समाज के उत्थान के लिए इसका मार्ग-दर्शन अनूठा है। ऐसा साहित्य सर्वसाधारण के लिए सुलभ हो सके, इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही दर्शन के विद्वान् डॉ. कमलचन्द सोगाणी ने आगमों की चयनिकाएँ तैयार की हैं। इन चयनिकाओं में से सर्व प्रथम 'आचारांग-चयनिका' प्रकाशित की जा रही है। इसमें आचारांग से चयनित सूत्र, उनका मूलानुगामी हिन्दी अनुवाद और उनका व्याकरणिक-विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस तरह पाठकों को विभिन्न प्रकार से इसका लाभ मिल सकेगा। शीघ्र ही उत्तराध्ययन-चयनिका और दशवैकालिक-चयनिका प्राकृत भारती से प्रकाशित होगी। सम्भवतया आगम-चयनिकाओं का अध्ययन बृहदाकार आगमों के अध्ययन के प्रति रुचि जागृत कर सकेगा। प्राकृत भारती अकादमी का विश्वास है कि आगमों के अध्ययन को सुलभ बनाने से व्यक्ति में सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति निष्ठा उत्पन्न हो सकेगी और समाज में एक नयी चेतना का उदय हो सकेगा।

अकादमी के संयुक्त सचिव एवं निदेशक तथा जैन विद्या के प्रकांड विद्वान् महोपाध्याय श्री विनयसागरजी के आभारी हैं, जिनके सतत प्रयत्न से यह पुस्तक शोभन रूप में प्रकाशित हो रही है।

प्रूफ संशोधन के लिए डॉ. सुषमा गांग एवं पुस्तक की सुन्दर छपाई के लिए अकादमी एम. एल. प्रिण्टर्स, जोधपुर के प्रति धन्यवाद ज्ञापन करता है।

देवेन्द्रराज मेहता
सचिव

राजरूप टांक
अध्यक्ष

प्राक्कथन

गणिपिटक को ही द्वादशांगी कहते हैं। द्वादशांगी में बारहवाँ अंग दृष्टिवाद विलुप्त/विच्छिन्न होने से अंग-प्रविष्ट आगमों में एकादशांग ही माने गये हैं। ग्यारह अंगों में भी आचारांग का सर्वप्रथम स्थान है। आचारांग-सूत्र आचार-प्रधान आगम होते हुए भी गूढ़ आत्म-दर्शनात्मक और अध्यात्म-प्रधान भी है।

श्रमण-जीवन की मूल भित्ति भी आचार ही है, श्रमण-जीवन की साधना भी आचार पर ही निर्भर है और संघीय व्यवस्था भी आचार पर ही अवलम्बित है। यही कारण है कि आचार की अतिशय महत्ता का प्रतिपादन करते हुए आचारांग के चूर्णिकार[1] और वृत्तिकार[2] लिखते हैं कि "अतीत, वर्त्तमान और भविष्य में जितने भी तीर्थंकर हुए हैं, विद्यमान हैं और होंगे, उन सभी ने सर्वप्रथम आचार का ही उपदेश दिया है, देते हैं और देंगे।"

आचारांग निर्युक्तिकार[3] आचार को ही सिद्धिसोपान/अव्याबाध सुख की भूमिका मानते हुए प्रश्नोत्तरात्मक शैली में कहते हैं कि, "अंग सूत्रों का सार आचार है, आचार का सार अनुयोगार्थ है, अनुयोगार्थ का सार प्ररूपणा है, प्ररूपणा का सार सम्यक् चारित्र है, सम्यक् चारित्र का सार निर्वाण है और निर्वाण का सार अव्याबाध सुख है।"

निर्युक्तिकार[4] के मतानुसार आचारांग के पर्यायवाची दश नाम प्राप्त होते हैं—1. आयार, 2. आचाल, 3, आगाल, 4. आगर, 5. आसास, 2. आयरिस, 7. अंग, 8. आइण्ण, 9. आजाइ और 10. आमोक्ख।

आचारांग सूत्र दो श्रुतस्कन्धों में विभक्त है। प्रथम श्रुतस्कन्ध में अनेक उद्देशकों सहित 9 अध्ययन हैं और द्वितीय श्रुतस्कन्ध में चार चूलिकाओं

---

1. चूर्णि पृष्ठ 3　　2. शीलांक टीका पृष्ठ 6
3. गाथा 16–17　　4. गाथा 290

सहित 16 अध्ययन हैं । रचना गद्य और पद्य में होते हुए भी गद्य:बहुल है । भाषा-शास्त्र की दृष्टि से प्रथम श्रुतस्कन्ध प्राचीनतम है और द्वितीय श्रुतस्कन्ध कुछ परवर्तीकाल का है ।

आचारांग सूत्र का आरम्भ ही आत्म-जिज्ञासा से होता है । इसमें आत्म-दृष्टि, अहिंसा, समता, वैराग्य, अप्रमाद, अनासक्ति, निस्पृहता, निस्संगता, सहिष्णुता, अचेलत्व, ध्यानसिद्धि, उत्कृष्ट संयम-साधना, तप की आराधना, मानसिक पवित्रता और आत्मशुद्धि-मूलक पवित्र जीवन का विस्तार से प्रतिपादन किया गया है । इसके साथ ही इसमें श्रमण भगवान् महावीर के छद्मस्थ काल की उच्चतम जीवन/संयम साधना के वे विलुप्त अंग भी प्राप्त होते हैं जो आगम-साहित्य में अन्यत्र कहीं भी प्राप्त नहीं हैं । इस ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषयों का अवलोकन करने पर यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि यदि साधनामय तपोपूत जीवन जीने की कला का शिक्षण प्राप्त करना हो तो साधक इस आगम ग्रन्थ-का अध्ययन अवश्यमेव करे ।

आचारांगसूत्र प्राकृत भाषा में होने के साथ-साथ दुरूह एवं विशाल भी है । इसका संस्कृत और हिन्दी आदि भाषात्मक व्याख्या साहित्य भी वृहदाकार होने से सामान्य पाठकों/जिज्ञासुओं के लिये इस आगम-ग्रन्थ का अध्ययन और रहस्य को समझ पाना अत्यन्त दुरूह नहीं होने पर भी कठिन तो अवश्य ही है ।

प्राकृत भाषा के सामान्य अभ्यासी अथवा अनभिज्ञ पाठक भी आचारांग सूत्र की महत्ता, इसमें प्रतिपादित जीवन के शाश्वत मूल्यों एवं आत्म-विकासोन्मुखी प्रमुख-प्रमुख विशेषताओं को हृदयंगम कर सकें, जीवन-साधना के पवित्र रहस्य तथा इसके प्रत्येक पहलुओं को समझ सकें, इसी भावना के वशीभूत होकर डॉ. कमलचन्दजी सोगाणी ने इस चयनिका का संकलन/निर्माण किया है ।

प्रस्तुत चयनिका में आचारांगसूत्र के विशाल कलेवर में से वैशिष्ट्यपूर्ण केवल एक सौ उनतीस सूत्रों का चयन है और साथ ही प्रत्येक सूत्र का व्याकरण

की दृष्टि से शाब्दिक हिन्दी अनुवाद भी। व्याकरणिक विश्लेषण में लेखक ने प्राकृत व्याकरण को दृष्टिपथ में रखते हुए प्रत्येक शब्द का मूल रूप, अर्थ और विभक्ति आदि का जिस पद्धति से आलेखन/परीक्षण किया है वह उनकी स्वयं की अनोखी शैली का परिचायक है। इस शैली से अध्ययन करने पर सामान्य पाठक/जिज्ञासु भी प्राकृत भाषा का सामान्य स्वरूप और प्रतिपाद्य विषय का हार्द सहज भाव से समझ सकता है।

इस प्रशस्य और सफल प्रयास के लिये मेरे सन्मित्र डॉ. सोगाणी साधुवादार्ह हैं। मेरी मान्यता है कि इनकी यह शैली अनुवाद-विधा में एक नया आयाम अवश्य ही स्थापित करेगी।

आषाढ़ी पूर्णिमा, सं. 2040
जयपुर

म. विनयसागर
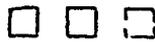
प्रस्तावना

यह सर्व विदित है कि मनुष्य अपनी प्रारम्भिक अवस्था से ही रंगों को देखता है, ध्वनियों को सुनता है, स्पर्शों का अनुभव करता है, स्वादों को चखता है तथा गन्धों को ग्रहण करता है। इस तरह उसकी सभी इन्द्रियाँ सक्रिय होती हैं। वह जानता है कि उसके चारों ओर पहाड़ हैं, तालाब हैं, वृक्ष हैं, मकान हैं, मिट्टी के टीले हैं, पत्थर हैं इत्यादि। आकाश में वह सूर्य, चन्द्रमा और तारों को देखता है। ये सभी वस्तुएँ उसके तथ्यात्मक जगत् का निर्माण करती हैं। इस प्रकार वह विविध वस्तुओं के बीच अपने को पाता है। उन्हीं वस्तुओं से वह भोजन, पानी, हवा आदि प्राप्त कर अपना जीवन चलाता है। उन वस्तुओं का उपयोग अपने लिए करने के कारण वह वस्तु-जगत् का एक प्रकार से सम्राट् बन जाता है। अपनी विविध इच्छाओं की तृप्ति भी बहुत सीमा तक वह वस्तु-जगत् से ही कर लेता है। यह मनुष्य की चेतना का एक आयाम है।

धीरे-धीरे मनुष्य की चेतना एक नया मोड़ लेती है। मनुष्य समझने लगता है कि इस जगत् में उसके जैसे दूसरे मनुष्य भी हैं, जो उसकी तरह हँसते हैं, रोते हैं, सुखी-दुःखी होते हैं। वे उसकी तरह विचारों, भावनाओं और क्रियाओं की अभिव्यक्ति करते हैं। चूँकि मनुष्य अपने चारों ओर की वस्तुओं का उपयोग अपने लिए करने का अभ्यस्त होता है, अतः वह अपनी इस प्रवृत्ति के वशीभूत होकर

मनुष्यों का उपयोग भी अपनी आकांक्षाओं और आशाओं की पूर्ति के लिए ही करता है। वह चाहने लगता है कि सभी उसी के लिए जीएँ। उसकी निगाह में दूसरे मनुष्य वस्तुओं से अधिक कुछ नहीं होते हैं। किन्तु, उसकी यह प्रवृत्ति वहुत समय तक चल नहीं पाती है। इसका कारण स्पष्ट है। दूसरे मनुष्य भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति में रत होते हैं। इसके फलस्वरूप उनमें शक्ति-वृद्धि की महत्वाकांक्षा का उदय होता है। जो मनुष्य शक्ति-वृद्धि में सफल होता है, वह दूसरे मनुष्यों का वस्तुओं की तरह उपयोग करने में समर्थ हो जाता है। पर मनुष्य की यह स्थिति घोर तनाव की स्थिति होती है। अधिकांश मनुष्य जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में इस तनाव की स्थिति में से गुजर चुके होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यह तनाव लम्वे समय तक मनुष्य के लिए असहनीय होता है। इस असहनीय तनाव के साथ-साथ मनुष्य कभी न कभी दूसरे मनुष्यों का वस्तुओं की तरह उपयोग करने में असफल हो जाता है। ये क्षण उसके पुनर्विचार के क्षण होते हैं। वह गहराई से मनुष्य-प्रकृति के विषय में सोचना प्रारम्भ करता है, जिसके फलस्वरूप उसमें सहसा प्रत्येक मनुष्य के लिए सम्मान-भाव का उदय होता है। वह अव मनुष्य-मनुष्य की समानता और उसकी स्वतन्त्रता का पोषक वनने लगता है। वह अव उनका अपने लिए उपयोग करने के वजाय अपना उपयोग उनके लिए करना चाहता है। वह उनका शोषण करने के स्थान पर उनके विकास के लिए चिंतन प्रारम्भ करता है। वह स्व-उदय के वजाय सर्वोदय का इच्छुक हो जाता है। वह सेवा लेने के स्थान पर सेवा करने को महत्त्व देने लगता है। उसकी यह प्रवृत्ति उसे तनाव से मुक्त कर देती है और वह एक प्रकार से विशिष्ट व्यक्ति वन जाता है। उसमें एक असाधारण अनुभूति का जन्म होता है। इस अनुभूति को ही हम मूल्यों की अनुभूति कहते हैं। वह अव वस्तु-जगत् में जीते

हुए भी मूल्य-जगत् में जीने लगता है। उसका मूल्य-जगत् में जीना धीरे-धीरे गहराई की ओर बढ़ता जाता है। वह अब मानव-मूल्यों की खोज में संलग्न हो जाता है। वह मूल्यों के लिए ही जीता है और समाज में उसकी अनुभूति बढ़े इसके लिए अपना जीवन समर्पित कर देता है। यह मनुष्य की चेतना का एक दूसरा आयाम है।

आचारांग में मुख्य रूप से मूल्यात्मक चेतना की सबल अभिव्यक्ति हुई है। इसका प्रमुख उद्देश्य अहिंसात्मक समाज का निर्माण करने के लिए व्यक्ति को प्रेरित करना है, जिससे समाज में समता के आधार पर सुख, शान्ति और समृद्धि के बीज अंकुरित हो सकें। अज्ञान के कारण मनुष्य हिंसात्मक प्रवृत्तियों के द्वारा श्रेष्ठ उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील होता है। वह हिंसा के दूरगामी कुप्रभावों को, जो उसके और समाज के जीवन को विकृत करते हैं, नहीं देख पाता है। किसी भी कारण से की गई हिंसा आचारांग को मान्य नहीं है। हिंसा के साथ ताल-मेल आचारांग की दृष्टि में हेय है। वह व्यावहारिक जीवन की विवशता हो सकती है, पर वह उपादेय नहीं हो सकती। हिंसा का अर्थ केवल किसी को प्राण-विहीन करना ही नहीं है, किन्तु किसी भी प्राणी की स्वतन्त्रता का किसी भी रूप में हनन हिंसा के अर्थ में ही सिमट जाता है। इसीलिए आचारांग में कहा है कि किसी भी प्राणी को मत मारो, उस पर शासन मत करो, उसको गुलाम मत बनाओ, उसको मत सताओ और उसे अशान्त मत करो। धर्म तो प्राणियों के प्रति समता-भाव में ही होता है। मेरा विश्वास है कि हिंसा का इतना सूक्ष्म विवेचन विश्व-साहित्य में कठिनाई से ही मिलेगा। समता की भूमिका पर हिंसा-अहिंसा के इतने विश्लेषण एवं विवेचन के कारण ही आचारांग को विश्व-साहित्य में सर्वोपरि स्थान दिया जा सकता है। आचारांग की

घोषणा है कि प्राणियों के विकास में अन्तर होने के कारण किसी भी प्रकार के प्राणी के अस्तित्व को नकारना अपने ही अस्तित्व को नकारना है। प्राणी विविध प्रकार के होते हैं : एकेन्द्रिय, द्विन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। इन सभी प्राणियों को जीवन प्रिय होता है, इन सभी के लिए दुःख अप्रिय होता है। आचारांग ने हिंसा-अहिंसा का विवेचन प्राणियों के सूक्ष्म निरीक्षण के आधार पर प्रस्तुत किया है, जो मेरी दृष्टि में एक विलक्षण प्रतिपादन है। ऐसा लगता है कि आचारांग मनुष्यों की संवेदनशीलता को गहरी करना चाहता है, जिससे मनुष्य एक ऐसे समाज का निर्माण कर सके जिसमें शोषण, अराजकता, नियमहीनता, अशान्ति और आपसी संबंधों में तनाव विद्यमान न रहे। मनुष्य अपने दुःखों को तो अनुभव कर ही लेता है, पर दूसरों के दुःखों के प्रति वह संवेदनशील प्रायः नहीं हो पाता है। यही हिंसा का मूल है। जब दूसरों के दुःख हमें अपने जैसे लगने लगें, जब दूसरों की चीख हमें अपनी चीख के समान मालूम हो, तो ही अहिंसा का प्रारम्भ हो सकता है। मनुष्य को अपने सार्वकालिक सूक्ष्म अस्तित्व में सन्देह न रहे, इस बात को समझाने के लिए पूर्वजन्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त से ही ग्रंथ का आरम्भ किया गया है। अपने सूक्ष्म अस्तित्व में सन्देह नैतिक-आध्यात्मिक मूल्यों को ही सन्देहात्मक बना देगा, जिससे व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन की आधारशिला ही गड़बड़ा जायगी। इसीलिए आचारांग ने सर्वप्रथम स्व-अस्तित्व एवं प्राणियों के अस्तित्व के साथ क्रियाओं एवं उनसे उत्पन्न प्रभावों में विश्वास उत्पन्न किया है। ये सभी व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन को वास्तविकता प्रदान करते हैं और इनके आधार पर ही मूल्यों की चर्चा सम्भव बन पाती है।

आचारांग में 323 सूत्र हैं, जो नौ[1] अध्ययनों में विभक्त हैं। इन विभिन्न अध्ययनों में जीवन-विकास के सूत्र बिखरे पड़े हैं। यहां मानववाद पूर्णरूप से प्रतिष्ठित है। आध्यात्मिक जीवन के लिए प्रेरणाएँ यहां उपलब्ध हैं। मूर्च्छा, प्रमाद, और ममत्व जीवन को दुःखी करने वाले कहे गए हैं। वस्तु-त्याग के स्थान पर ममत्व-त्याग को आचारांग में महत्त्व दिया गया है। वस्तु-त्याग, ममत्व-त्याग से प्रतिफलित होना चाहिये। आध्यात्मिक-जागृति मूल्यवान् कही गई है, जिसके फलस्वरूप मनुष्य मान-अपमान, लाभ-हानि आदि द्वन्द्वों की निरर्थकता को समझ सकता है। अहिंसा, सत्य और समता के ग्रहण को प्रमुख स्थान दिया गया है। बुद्धि और तर्क जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी होते हुए भी, आध्यात्मिक अनुभव इनकी पकड़ से बाहर प्रतिपादित हैं। साधनामय मरण की प्रेरणा सूत्रों में व्याप्त है। आचारांग में भगवान् महावीर की साधना का ओजस्वी वर्णन किसी भी साधक के लिए मार्ग-दर्शक हो सकता है। यहां यह ध्यान देने योग्य है कि आचारांग की रचना-शैली और विषय की गम्भीरता को देखते हुए यह कहा गया है कि आचारांग उपलब्ध आगमों में सबसे प्राचीन है। "आचारांग आगम-साहित्य में सर्वाधिक प्राचीन है। उसमें वर्णित आचार मूलभूत है और वह महावीर युग के अधिक सन्निकट है।"[2]

आचारांग के इन 323 सूत्रों में से ही हमने 129 सूत्रों का चयन 'आचारांग चयनिका' शीर्षक के अन्तर्गत किया है। इस चयन का उद्देश्य पाठकों के समक्ष आचारांग के उन कुछ सूत्रों को प्रस्तुत करना है, जो मनुष्यों में अहिंसा, सत्य, समता और जागृति

---

1. वर्तमान में 8 अध्ययन ही प्राप्त हैं, 7वां अध्ययन अनुपलब्ध है।
2. जैन आगम-साहित्य : मनन और मीमांसा, पृष्ठ, 60.

(अनासक्ति) की मूल्यात्मक भावना को दृढ़ कर सकें, जिससे उनमें नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों की चेतना सघन बन सके। अब हम इस चयनिका की विषय-वस्तु की चर्चा करेंगे।

पूर्वजन्म और पुनर्जन्म :

मनुष्य समय-समय पर मनुष्यों को मरते हुए देखता है। कभी न कभी उसके मन में स्व-अस्तित्व की निरन्तरता का प्रश्न उपस्थित हो ही जाता है। जीवन के गम्भीर क्षणों में यह प्रश्न उसके मानस-पटल पर गहराई से अंकित होता है। अतः स्व-अस्तित्व का प्रश्न मनुष्य का मूलभूत प्रश्न है। आचारांग ने सर्वप्रथम इसी प्रश्न से चिन्तन प्रारम्भ किया है। आचारांग का यह विश्वास प्रतीत होता है कि इस प्रश्न के समाधान के पश्चात् ही मनुष्य स्थिर मन से अपने विकास की बातों की ओर ध्यान दे सकता है। यदि स्व-अस्तित्व ही त्रिकालिक नहीं है तो मूल्यात्मक विकास का क्या प्रयोजन? स्व-अस्तित्व में आस्था उत्पन्न करने के लिए आचारांग पूर्वजन्म-पुनर्जन्म की चर्चा से शुरू होता है। आचारांग का कहना है कि यहाँ कुछ मनुष्यो में यह होश नहीं होता है कि वे अमुक दिशा से इस लोक में आएँ हैं (1)। वे यह भी नहीं जानते हैं कि वे आगामी जन्म में किस अवस्था को प्राप्त करेंगे (1)? यहाँ प्रश्न यह है कि क्या स्व-अस्तित्व की निरन्तरता का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है? कुछ लोग तो पूर्वजन्म में स्व-अस्तित्व का ज्ञान अपनी स्मृति के माध्यम से कर लेते हैं। कुछ दूसरे लोग अतीन्द्रिय ज्ञानियों के कथन से इसको जान पाते हैं तथा कुछ और लोग उन लोगों से जान लेते हैं जो अतीन्द्रिय ज्ञानियों के सम्पर्क में आए हैं (2) इस तरह से पूर्वजन्म में स्व-अस्तित्व का ज्ञान स्वयं के देखने से अथवा अतीन्द्रिय ज्ञानियों के देखने से होता है। पूर्व जन्मों के ज्ञान से ही पुनर्जन्म के होने का विश्वास उत्पन्न हो सकता है। आचारांग ने पुनर्जन्म में

विश्वास को पूर्व जन्म के ज्ञान पर आश्रित किया है। ऐसा लगता है कि महावीर-युग में व्यक्ति को पूर्वजन्म की स्मृति में उतारने की क्रिया वर्तमान थी और यह आध्यात्मिक उत्थान के प्रति जागृति का सबल माध्यम था। जन्मों-जन्मों में स्व-अस्तित्व के होने में विश्वास करने वाला ही आचारांग की दृष्टि में आत्मा को मानने वाला होता है। जन्मों-जन्मों पर विश्वास से देश-काल में तथा पुद्गलात्मक लोक में विश्वास उत्पन्न होता है। इसी से मन-वचन-काय की क्रियाओं और उनसे उत्पन्न प्रभावों को स्वीकार किया जाता है। आचारांग का कहना है कि जो मनुष्य पूर्वजन्म और पुनर्जन्म को समझ लेता है वह ही व्यक्ति आत्मवादी, लोकवादी, कर्मवादी और क्रियावादी कहा गया है (3)। इसी आधार पर समाज में नैतिक-आध्यात्मिक मूल्यों का भवन खड़ा किया जा सकता है और सामाजिक उत्थान को वास्तविक बनाया जा सकता है।

क्रियाओं की विपरीतता :

आचारांग इस बात पर खेद व्यक्त करता है कि मनुष्य के द्वारा मन-वचन-काय की क्रिया की सही दिशा समझी हुई नहीं है। इसीलिए उनसे उत्पन्न कुप्रभावों के कारण वह थका देने वाले एक जन्म से दूसरे जन्म में चलता जाता है और अनेक प्रकार की योनियों में सुखों-दुःखों का अनुभव करता रहता है (4)। मनुष्य की क्रियाओं के प्रयोजनों का विश्लेषण करते हुए आचारांग का कहना है कि मनुष्य के द्वारा मन-वचन-काय की क्रियाएँ जिन प्रयोजनों से की जाती हैं वे हैं : (i) वर्तमान जीवन की रक्षा के प्रयोजन से, (ii) प्रशंसा, आदर तथा पूजा पाने के प्रयोजन से, (iii) भावी-जन्म की उधेड़-बुन के कारण, वर्तमान में मरण-भय के कारण तथा परम शान्ति प्राप्त करने तथा दुःखों को दूर करने के प्रयोजन से (5, 6)। जिसने क्रियाओं के इतने शुरुआत जान लिए हैं उसने ही क्रियाओं

का ज्ञान प्राप्त किया है (7)। किन्तु दुःख की बात यह है कि मनुष्य इन विभिन्न प्रयोजनों की प्राप्ति के लिए विभिन्न जीवों की हिंसा करता है, उनकी हिंसा करवाता है तथा उनकी हिंसा करने वालों का अनुमोदन करता है (8 से 15)। आचारांग का कहना है कि क्रियाओं की यह विपरीतता जो हिंसा में प्रकट होती है मनुष्य के अहित के लिए होती है, वह उसके अध्यात्महीन बने रहने का कारण होती है (8 से 15) यह हिंसा-कार्य निश्चित ही बन्धन में डालने वाला है, मूर्च्छा में पटकने वाला है, और अमंगल में धकेलने वाला है (16)। अतः क्रियाओं की विपरीतता का माप-दण्ड है, हिंसा। जा क्रिया हिंसात्मक है वह विपरीत है। यहां हिंसा को व्यापक अर्थ में समझा जाना चाहिए। किसी प्राणी को मारना, उसको गुलाम बनाना, उस पर शासन करना आदि सभी क्रियाएँ हिंसात्मक हैं(72)। जब मन-वचन-काय की क्रियाओं की विपरीतता समाप्त होती हैं, तब मनुष्य न तो विभिन्न जीवों की हिंसा करता है, न हिंसा करवाता है और न ही हिंसा करने वालों का अनुमोदन करता है (17)। उसके जीवन में अहिंसा प्रकट हो जाती है अर्थात् न वह प्राणियों को मारता है, न उन पर शासन करता है, न उनको गुलाम बनाता है, न उनको सताता है और न ही उन्हें कभी किसी प्रकार से अशान्त करता है (72)। अतः कहा जा सकता है कि यदि क्रियाओं की विपरीतता का मापदण्ड हिंसा है तो उनकी उचितता का मापदण्ड अहिंसा होगा। जिसने भी हिंसात्मक क्रियाओं को दृष्टाभाव से जान लिया, उसके हिंसा समझ में आ जाती है और धीरे धीरे वह उससे छूट जाती है (17)।

क्रियाओं का प्रभाव :

मन-वचन-काय की क्रियाओं की विपरीतता और उनकी उचितता का प्रभाव दूसरों पर पड़ता भी है और नहीं भी पड़ता है,

किन्तु, अपने आप पर तो प्रभाव पड़ ही जाता है। वे क्रियाएँ मनुष्य के व्यक्तित्व का अंग बन जाती हैं। इसे ही कर्म-बन्धन कहते हैं। यह कर्म-बन्धन ही व्यक्ति के सुखात्मक और दुःखात्मक जीवन का आधार होता है। इस विराट् विश्व में हिंसा व्यक्तित्व को विकृत कर देती है और अपने तथा दूसरों के दुःखात्मक जीवन का कारण बनती है और अहिंसा व्यक्तित्व को विकसित करती है और अपने तथा दूसरों के सुखात्मक जीवन का कारण बनती है। हिंसा विराट् प्रकृति के विपरीत है। अतः वह हमारी ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी होने से रोकती है और ऊर्जा को ध्वंस में लगा देती है, किन्तु अहिंसा विराट् प्रकृति के अनुकूल होने से हमारी ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए मार्ग-प्रशस्त करती है और ऊर्जा को रचना में लगा देती है। हिंसात्मक क्रियाएँ मनुष्य की चेतना को सिकोड़ देती हैं और उसको ह्रास की ओर ले जाती हैं, अहिंसात्मक क्रियाएँ मनुष्य की चेतना को विकास की ओर ले जाती हैं। इस प्रकार इन क्रियाओं का प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है। अतः आचारांग ने कहा है कि जो मनुष्य कर्म-बन्धन और कर्म से छुटकारे के विषय में खोज करता है वह शुद्ध-बुद्धि होता है। (50)।

मूर्च्छित मनुष्य की दशा :

वास्तविक स्व-अस्तित्व का विस्मरण ही मूर्च्छा है। इसी विस्मरण के कारण मनुष्य व्यक्तिगत अवस्थाओं और सामाजिक परिस्थितियों से उत्पन्न सुख-दुःख से एकीकरण करके सुखी-दुःखी होता रहता है। मूर्च्छित मनुष्य स्व-अस्तित्व (आत्मा) के प्रति जागरूक नहीं होता है, वह अशांति से पीड़ित होता है, समता-भाव से दरिद्र होता है, उसे अहिंसा पर आधारित मूल्यों का ज्ञान देना कठिन होता है तथा वह अध्यात्म को समझने वाला नहीं होता है

(18)। मूर्च्छित मनुष्य इन्द्रिय-विषयों में ही ठहरा रहता है (22)। वह आसक्ति-युक्त होता है और कुटिल आचरण में ही रत रहता है (22)। वह हिंसा करता हुआ भी दूसरों को अहिंसा का उपदेश देता रहता है। (25)। इस तरह से वह अर्हत् (जीवन-मुक्त) की आज्ञा के विपरीत चलने वाला होता है (22, 96)। स्व-अस्तित्व के प्रति जागरूक होना ही अर्हत् की आज्ञा में रहना है। इस जगत् में यह विचित्रता है कि सुख देने वाली वस्तु दुःख देने वाली बन जाती है और दुःख देने वाली वस्तु सुख देने वाली बन जाती है। मूर्च्छित (आसक्ति-युक्त) मनुष्य इस बात को देख नहीं पाता है (39)। इसलिए वह सदैव वस्तुओं के प्रति आसक्त बना रहता है, यही उसका अज्ञान है (44)। विषयों में लोलुपता के कारण वह संसार में अपने लिए वैर की वृद्धि करता रहता है (45) और बार-बार जन्म-धारण करता रहता है (53)। अतः कहा जा सकता है कि मूर्च्छित (अज्ञानी) मनुष्य सदा सोया हुआ अर्थात् सत्मार्ग को भूला हुआ होता है (52)। जो मनुष्य मूर्च्छारूपी अंधकार में रहता है वह एक प्रकार से अंधा ही है। वह इच्छाओं में आसक्त बना रहता है और उन इच्छाओं की पूर्ति के लिए वह प्राणियों की हिंसा में संलग्न होता है (98)। वह प्राणियों को मारने वाला, छेदने वाला, उनकी हानि करने वाला तथा उनको हैरान करने वाला होता है (29)। इच्छाओं के तृप्त न होने पर वह शोक करता है, क्रोध करता है, दूसरों को सताता है और उनको नुकसान पहुंचाता है (43)। यहाँ यह समझना चाहिए कि सतत हिंसा में संलग्न रहने वाला व्यक्ति भयभीत व्यक्ति होता है। आचारांग ने ठीक ही कहा है कि प्रमादी (मूर्च्छित) व्यक्ति को सब ओर से भय होता है (69)। वह सदैव मानसिक तनावों से भरा रहता है। चूँकि उसके अनेक चित्त होते हैं, इसलिए उसका अपने लिए शांति (तनाव-मुक्ति) का दावा करना

ऐसे ही है जैसे कोई चलनी को पानी से भरने का दावा करे (60)। मूर्च्छित मनुष्य संसाररूपी प्रवाह में तैरने के लिए बिल्कुल समर्थन नहीं होता है (37)। वह भोगों का अनुमोदन करने वाला होता है तथा दुःखों के भँवर में ही फिरता रहता है (38)। वह दिन-रात दुःखी होता हुआ जीता है। वह काल-अकाल में तुच्छ वस्तुओं की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता रहता है। वह केवल स्वार्थपूर्ण संबंध का अभिलाषी होता है। वह धन का लालची होता है तथा व्यवहार में ठगने वाला होता है। वह बिना विचार किए कार्यों को करने वाला होता है तथा विभिन्न समस्याओं के समाधान के लिए बार-बार शस्त्रों/हिंसा का प्रयोग को ही महत्व देता है (26)।

आध्यात्मिक प्रेरक तथा उनसे प्राप्त शिक्षा :

यह मूर्च्छित मनुष्यों का जगत् है। ऐसा होते हुए भी यह जगत् मनुष्य को ऐसे अनुभव प्रदान करने के लिए सक्षम है, जिनके द्वारा वह अपने आध्यात्मिक उत्थान के लिए प्रेरणा प्राप्त कर सकता है। मनुष्य कितना ही मूर्च्छित क्यों न हो फिर भी बुढ़ापा, मृत्यु और धन-वैभव की अस्थिरता उसको एक बार जगत् के रहस्य को समझने के लिए बाध्य कर ही देते हैं। यह सच है कि कुछ मनुष्यों के लिए यह जगत् इन्द्रिय-तुष्टि का ही माध्यम बना रहता है (74), किन्तु कुछ मनुष्य ऐसे संवेदनशील होते हैं कि यह जगत् उनकी मूर्च्छा को आखिर तोड़ ही देता है।

मनुष्य देखता है कि प्रति क्षण उसकी आयु क्षीण हो रही है। अपनी बीती हुई आयु को देखकर वह व्याकुल होता है और बुढ़ापे में उसका मन गड़बड़ा जाता है। जिनके साथ वह रहता है, वे ही आत्मीय-जन उसको बुरा-भला कहने लगते हैं और वह भी उनको बुरा-भला कहने लग जाता है। बुढ़ापे की अवस्था में वह मनोरंजन

के लिए, क्रीड़ा के लिए तथा प्रेम के लिए नीरसता व्यक्त करता है (27)। अत: आचारांग का शिक्षण है कि ये आत्मीय-जन मनुष्य के सहारे के लिए पर्याप्त नहीं होते हैं और वह भी उनके सहारे के लिए पर्याप्त नहीं होता है (27) इस प्रकार मनुष्य बुढ़ापे को समझकर आध्यात्मिक प्रेरणा ग्रहण करे तथा संयम के लिए प्रयत्नशील बने। और वर्तमान मनुष्य-जीवन के संयोग को देखकर आसक्ति-रहित बनने का प्रयास करे (28)। आचारांग का कथन है कि हे मनुष्यों! आयु बीत रही है, यौवन भी बीत रहा है, अत: प्रमाद (आसक्ति) में मत फँसो (28)। और जब तक इन्द्रियों की शक्ति क्षीण न हो, तब तक ही स्व-अस्तित्व के प्रति जागरूक होकर आध्यात्मिक विकास में लगो (30)।

आचारांग सर्व-अनुभूत तथ्य को दोहराता है कि मृत्यु के लिए किसी भी क्षण न आना नहीं है (36)। इसी बात को रखते हुए आचारांग फिर कहता है कि मनुष्य इस देह-संगम को देखे। यह देह-संगम छूटता अवश्य है। इसका तो स्वभाव ही नश्वर है। यह अध्रुव है, अनित्य है और अशाश्वत है (85)। आचारांग उनके प्रति आश्चर्य प्रकट करता है जो मृत्यु के द्वारा पकड़े हुए होने पर भी संग्रह में आसक्त होते हैं (74)। मृत्यु की अनिवार्यता हमारी आध्यात्मिक प्रेरणा का कारण बन सकती है। कुछ मनुष्य इससे प्रेरणा ग्रहण कर अनासक्ति की साधना में लग जाते हैं।

धन-वैभव में मनुष्य सबसे अधिक आसक्त होता है। चूँकि जीवन की सभी आवश्यकताएँ इसी से पूरी होती हैं, इसलिए मनुष्य इसका संग्रह करने के लिए सभी प्रकार के उचित-अनुचित कर्म में संलग्न हो जाता है। आचारांग आसक्त मनुष्य का ध्यान धन-वैभव के नाश की ओर आकर्षित करते हुए कहता है कि कभी चोर धन-

वैभव का अपहरण कर लेते हैं, कभी राजा उसको छीन लेता है और कभी वह घर-दहन में जला दिया जाता है (37)। धन-वैभव का नाश कुछ मनुष्यों को आध्यात्मिक प्रेरणा देकर उनको आत्म-जागृति की स्थिति में लाने के लिए समर्थ हो सकता है।

इस तरह से जब मूर्च्छित मनुष्य को संसार की निस्सारता का भान होने लगता है (61), तो उसकी मूर्च्छा की सघनता धीरे-धीरे कम होती जाती है और वह अध्यात्म-मार्ग की ओर चल पड़ता है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि यदि अध्यात्म में प्रगति किया हुआ व्यक्ति मिल जाए, तो भी मूर्च्छित मनुष्य जागृत स्थिति में छलाँग लगा सकता है (93)। इस तरह से बुढ़ापा, मृत्यु, धन-वैभव का नाश, संसार की निस्सारता और जागृत मनुष्य के दर्शन—ये सभी मूर्च्छित मनुष्य को आध्यात्मिक प्रेरणा देकर उसमें स्व-अस्तित्व का बोध पैदा कर सकते हैं।

आन्तरिक रूपान्तरण और साधना के सूत्र :

आत्म-जागृति अथवा स्व-अस्तित्व के बोध के पश्चात् आचारांग मनुष्य को चारित्रात्मक आन्तरिक रूपान्तरण के महत्त्व को बतलाते हुए साधना के ऐसे सारभूत सूत्रों को बतलाता है जिससे उसकी साधना पूर्णता को प्राप्त हो सके। कहा है कि हे मनुष्य! तू ही तेरा मित्र है (66), तू अपने मन को रोक कर जी (61)। जो सुन्दर चित्तवाला है, वह व्याकुलता में नहीं फँसता है (68)। तू मानसिक विषमता (राग-द्वेष) के साथ ही युद्ध कर, तेरे लिए बाहरी व्यक्तियों से युद्ध करने से क्या लाभ (99)? बंध (अशांति) और मोक्ष (शान्ति) तेरे अपने मन में ही है (97)। धर्म न गाँव में होता है और न जंगल में, वह तो एक प्रकार का आन्तिरिक रूपान्तरण है (96)। कहा गया है कि जो ममतावाली वस्तु-बुद्धि को

छोड़ता है, वह ममतावाली वस्तु को छोड़ता है, जिसके लिए कोई ममतावाली वस्तु नहीं है, वह ही ऐसा ज्ञानी है, जिसके द्वारा अध्यात्म-पथ जाना गया है (46)।

आन्तरिक रूपान्तरण के महत्त्व को समझाने के बाद आचारांग ने हमें साधना की दिशाएँ बताई हैं। ये दिशाएँ ही साधना के सूत्र हैं। (i) अज्ञानी मनुष्य का बाह्य जगत् से सम्पर्क उसमें आशाओं और इच्छाओं को जन्म देता है। मनुष्यों से वह अपनी आशाओं की पूर्ति चाहने लगता है और वस्तुओं की प्राप्ति के द्वारा वह इच्छाओं की तृप्ति चाहता है। इस तरह से मनुष्य आशाओं और इच्छाओं का पिण्ड बना रहता है। ये ही उसके मानसिक तनाव, अशान्ति और दुःख के कारण होते हैं (39)। इसलिए आचारांग का कथन है कि मनुष्य आशा और इच्छा को त्यागे (39)। (ii) जो व्यक्ति इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होता है, वह बहिर्मुखी ही बना रहता है, जिसके फल-स्वरूप उसके कर्म-बंधन नहीं हटते हैं और उसके विभाव-संयोग (राग-द्वेषात्मक भाव) नष्ट नहीं होते हैं (78)। अतः इन्द्रिय-विषय में अनासक्ति साधना के लिए आवश्यक है। यहीं से संयम की यात्रा प्रारम्भ होती है (53)। आचारांग का कथन है कि हे मनुष्य! तू अनासक्त हो जा और अपने को नियन्त्रित कर (76)। जैसे अग्नि जीर्ण (सूखी) लकड़ियों को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार अनासक्त व्यक्ति राग-द्वेष को नष्ट कर देती है (76)। (iii) कषाएँ मनुष्य की स्वाभाविकता को नष्ट कर देती हैं। कषायों का राजा मोह है। जो एक मोह को नष्ट कर देता है, वह बहुत कषायों को नष्ट कर देता है (69)। अहंकार मृदु सामाजिक सम्बन्धों तथा आत्म-विकास का शत्रु है। कहा है कि उत्थान का अहंकार होने पर मनुष्य मूढ बन जाता है (91)। जो क्रोध आदि कषायों को तथा अहंकार को नष्ट करके चलता है,

वह संसार-प्रवाह को नष्ट कर देता है (62-70)। (vi) मानव-समाज में न कोई नीच है और न कोई उच्च है (34)। सभी के साथ समतापूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिए। आचारांग के अनुसार समता में ही धर्म है (88)। (v) इस जगत् में सब प्राणियों के लिए पीड़ा अशान्ति है, दु:ख-युक्त है (23)। सभी प्राणियों के लिए यहाँ सुख अनुकूल होते हैं, दु:ख प्रतिकूल होते हैं, वध अप्रिय होते हैं तथा जिन्दा रहने की अवस्थाएँ प्रिय होती हैं। सब प्राणियों के लिए जीवन प्रिय होता है (36)। अतः आचारांग का कथन है कि कोई भी प्राणी मारा नहीं जाना चाहिए, गुलाम नहीं बनाया जाना चाहिए, शासित नहीं किया जाना चाहिए, सताया नहीं जाना चाहिए और अशान्त नहीं किया जाना चाहिए। यही धर्म शुद्ध है, नित्य है, और शाश्वत है (72)। जो अहिंसा का पालन करता है, वह निर्भय हो जाता है (69)। हिंसा तीव्र से तीव्र होती है, किन्तु अहिंसा सरल होती है (69)। अतः हिंसा को मनुष्य त्यागे। प्राणियों में तात्विक समता स्थापित करते हुए आचारांग अहिंसा-भावना को दृढ़ करने के लिए कहता है कि जिसको तू मारे जाने योग्य मानता है; वह तू ही है; जिसको तू शासित किए जाने योग्य मानता है- वह तू ही है; जिसको तू सताए जाने योग्य मानता है, वह तू ही है; जिसको तू गुलाम बनाए जाने योग्य मानता है, वह तू ही है; जिसको तू अशान्त किए जाने योग्य मानता है, वह तू ही है; (94)। इसलिए ज्ञानी, जीवों के प्रति दया का उपदेश दे और दया पालन की प्रशंसा करे (101)। (vi) आचारांग ने समता और अहिंसा की साधना के साथ सत्य की साधना को भी स्वीकार किया है। आचारांग का शिक्षण है कि हे मनुष्य ! तू सत्य का निर्णय कर, सत्य में धारणा कर और सत्य की आज्ञा में उपस्थित रह (59, 68)। (vii) संग्रह, समाज में आर्थिक विषमता पैदा करता है।

अतः आचारांग का कथन है कि मनुष्य अपने को परिग्रह से दूर रखे (42)। बहुत भी प्राप्त करके वह उसमें आसक्तियुक्त न बने (42)। (viii) आचारांग में समतादर्शी (अर्हत्) की आज्ञा-पालन को कर्त्तव्य कहा गया है (99)। कहा है कि कुछ लोग समतादर्शी की अनाज्ञा में भी तत्परता सहित होते हैं, कुछ लोग उसकी आज्ञा में भी आलसी होते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिए (96)। यहाँ यह पूछा जा सकता है कि क्या मनुष्य के द्वारा आज्ञा पालन किए जाने को महत्त्व देना उसकी स्वतन्त्रता का हनन नहीं है? उत्तर में कहा जा सकता है कि स्वतन्त्रता का हनन तब होता है जब बुद्धि या तर्क से सुलझाई जाने वाली समस्याओं में भी आज्ञा-पालन को महत्त्व दिया जाए। किन्तु, जहाँ बुद्धि की पहुंच न हो ऐसे आध्यात्मिक रहस्यों के क्षेत्र में आत्मानुभवी (समतादर्शी) की आज्ञा का पालन ही साधक के लिए आत्म-विकास का माध्यम बन सकता है। संसार को जानने के लिये संशय अनिवार्य है (83), पर समाधि के लिए श्रद्धा अनिवार्य है (92)। इससे भी आगे चलें तो समाधि में पहुंचने के लिये समतादर्शी की आज्ञा में चलना आवश्यक है। संशय से विज्ञान जन्मता है, पर आत्मानुभवी की आज्ञा में चलने से ही समाधि-अवस्था तक पहुँचा जा सकता है। अतः आचा-रांग ने अर्हत् की आज्ञा-पालन को कर्त्तव्य कहकर आध्यात्मिक रहस्यों को जानने के लिए मार्ग-प्रशस्त किया है। (ix) मनुष्य लोक की प्रशंसा प्राप्त करना चाहता है, पर लोक असाधारण कार्यों की बड़ी मुश्किल से प्रशंसा करता है। उसकी पहुँच तो सामान्य कार्यों तक ही होती है। मूल्यों का साधक व्यक्ति असाधारण व्यक्ति होता है, अतः उसको अपने क्रान्तिकारी कार्यों के लिए प्रशंसा मिलना कठिन होता है। प्रशंसा का इच्छुक प्रशंसा न मिलने पर कार्यों को निश्चय ही छोड़ देगा। आचारांग ने मनुष्य की इस वृत्ति

को समझकर कहा है कि मूल्यों का साधक लोक के द्वारा प्रशंसित होने के लिये इच्छा ही न करे (73)। वह तो व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन में मूल्यों की साधना से सदैव जुड़ा रहे।

साधना की पूर्णता :

साधना की पूर्णता होने पर हमें ऐसे महामानव के दर्शन होते हैं जो व्यक्ति के विकास और सामाजिक प्रगति के लिये प्रेरणा-स्तम्भ होता है। आचारांग में ऐसे महामानव की विशेषताओं को बड़ी सूक्ष्मता से दर्शाया गया है। उसे द्रष्टा, अप्रमादी, जाग्रत, अनासक्त, वीर, कुशल आदि शब्दों से इंगित किया गया है। (i) द्रष्टा के लिए कोई उपदेश शेष नहीं है (38)। उसका कोई नाम नहीं है (71)। (ii) उसकी आँखें विस्तृत होती हैं अर्थात् वह सम्पूर्ण लोक को देखने वाला होता है (44)। (iii) वह बन्धन और मुक्ति के विकल्पों से परे होता है (50)। वह शुभ-अशुभ, आदि दोनों अन्तों से नहीं कहा जा सकता है, इसलिए वह द्वन्द्वातीत होता है (56,64) और उसका अनुभव किसी के द्वारा न छेदा जा सकता है, न भेदा जा सकता है, न जलाया जा सकता है तथा न नष्ट किया जा सकता है (64)। वह किसी भी विपरीत परिस्थिति में खिन्न नहीं होता है और वह किसी भी अनुकूल परिस्थिति में खुश नहीं होता है। वास्तव में वह तो समता-भाव में स्थित रहता है (47)(iv) वह पूर्ण जागरूकता से चलने वाला होता है अतः वह वीर हिंसा से संलग्न नहीं किया जाता है (49)। वह सदैव ही आध्यात्मिकता में जागता है (51)। (v) वह अनुपम प्रसन्नता में रहता है (48)। (vi) वह कर्मों से रहित होता है। उसके लिए सामान्य लोक प्रचलित आचरण आवश्यक नहीं होता है, (55)। किन्तु उसका आचरण व्यक्ति व समाज के लिए मार्ग-दर्शक होता है। वह मूल्यों से अलगाव

को तथा पशु-प्रवृत्तियों के प्रति लगाव को समाज के जीवन में सहन नहीं करता है (47)। आचारांग का शिक्षण है कि जिस काम को जाग्रत व्यक्ति करता है, व्यक्ति व समाज उसको करे (50) (vii) वह इन्द्रियों के विषयों को द्रष्टाभाव से जाना हुआ होता है, इसलिए वह आत्मवान्, ज्ञानवान्, वेदवान्, धर्मवान् और ब्रह्मवान् कहा जा सकता है (52) (viii) जो लोक में परम तत्त्व को देखने वाला है, वह वहाँ विवेक से जीने वाला होता है, वह तनाव से मुक्त, समतावान्, कल्याण करने वाला, सदा जितेन्द्रिय, कार्यों के लिए उचित समय को चाहने वाला होता है तथा वह अनासक्तिपूर्वक लोक में गमन करता है (58)। (ix) उस महामानव के आत्मानुभव का वर्णन करने में सब शब्द लौट आते हैं, उसके विषय में कोई तर्क उपयोगी नहीं होता है, बुद्धि उसके विषय में कुछ भी पकड़ने वाली नहीं होती है (97)। आत्मानुभव की वह अवस्था आभामयी होती है। वह केवल ज्ञाता—द्रष्टा-अवस्था होती है (97)।

महावीर का साधनामय जीवन :

आचारांग ने महावीर के साधनामय जीवन पर प्रकाश डाला है। यह जीवन किसी भी साधक के लिए प्रेरणा-स्रोत बन सकता है। महावीर सांसारिक परतन्त्रता को त्यागकर आत्मस्वातन्त्र्य के मार्ग पर चल पड़े (103) उनकी साधना में ध्यान प्रमुख था। वे तीन घंटे तक बिना पलक झपकाए आंखों को भीत पर लगाकर आन्तरिक रूप से ध्यान करते थे (104)। यदि महावीर गृहस्थों से युक्त स्थान में ठहरते थे तो भी वे उनसे मेल-जोल न बढ़ाकर ध्यान में ही लीन रहते थे। बाधा उपस्थित होने पर वे वहाँ से चले जाते थे। वे ध्यान की तो कभी भी उपेक्षा नहीं करते थे (105)। महावीर अपने समय को कथा-नाच-गान में, लाठी-युद्ध तथा मूठी युद्ध को

देखने में नहीं बिताते थे (106)। काम-कथा तथा कामातुर इशारों में वे हर्ष-शोक रहित होते थे (107)। वे प्राणियों की हिंसा से बचकर विहार करते थे (108)। वे खाने-पीने की मात्रा को समझने वाले थे और रसों में कभी लालायित नहीं होते थे (109)। महावीर कभी शरीर को नहीं खुजलाते थे और आँखों में कुछ गिरने पर आँखों को पोंछते भी नहीं थे (110)। वे कभी शून्य घरों में, कभी लुहार, कुम्हार आदि के कर्म-स्थानों में, कभी बगीचे में, मसाण में और कभी पेड़ के नीचे ठहरते थे और संयम में सावधानी बरतते हुए वे ध्यान करते थे (112, 113, 114)। महावीर सोने में आनन्द नहीं लेते थे। नींद आती तो अपने को खड़ा करके जगा लेते थे। वे थोड़ा सोते अवश्य थे पर नींद की इच्छा रखकर नहीं (115)। यदि रात में उनको नींद सताती, तो वे आवास से बाहर निकलकर इधर-उधर घूम कर फिर जागते हुए ध्यान में बैठ जाते थे (116)।

महावीर ने लौकिक तथा अलौकिक कष्टों को समतापूर्वक सहन किया (117, 118)। विभिन्न परिस्थितियों में हर्ष और शोक पर विजय प्राप्त करके वे समता-युक्त बने रहे (119)। लाढ देश के लोगों ने उनको बहुत हैरान किया। वहाँ कुछ लोग ऐसे थे जो महावीर के पीछे कुत्तों को छोड़ देते थे। कुछ लोग उन पर विभिन्न प्रकार से प्रहार करते थे (120, 121, 122)। किन्तु, जैसे कवच से ढका हुआ योद्धा संग्राम के मोर्चे पर रहता है, वैसे ही वे महावीर वहाँ दुर्व्यवहार को सहते हुए आत्म-नियन्त्रित रहे (123)।

दो मास से अधिक अथवा छः मास तक भी महावीर कुछ नहीं खाते-पीते थे। रात-दिन वे राग-द्वेष-रहित रहे (124)। कभी वे दो दिन के उपवास के बाद में, कभी तीन दिन के उपवास के बाद में कभी

चार अथवा पाँच दिन के उपवास के बाद में भोजन करते थे (125)। वे गृहस्थ के लिए बने हुए विशुद्ध आहार की ही भिक्षा ग्रहण करते थे और उसको वे समता-युक्त बने रहकर उपयोग में लाते थे (127)।

महावीर कषाय रहित थे। वे शब्दों और रूपों में अनासक्त रहते थे। जब वे असर्वज्ञ थे, तब भी उन्होंने साहस के साथ संयम पालन करते हुए एक बार भी प्रमाद नहीं किया (128)। महावीर जीवन-पर्यन्त समता-युक्त रहे (129)।

चयनिका के उपर्युक्त विषय-विवेचन से स्पष्ट है कि आचारांग में जीवन के मूल्यात्मक पक्ष की सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है। इसी विशेषता से प्रभावित होकर यह चयन (आचारांग चयनिका) पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हर्ष का अनुभव हो रहा है। सूत्रों का हिन्दी अनुवाद मूलानुगामी रहे ऐसा प्रयास किया गया है। यह दृष्टि रही है कि अनुवाद पढ़ने से ही शब्दों की विभक्तियाँ एवं उनके अर्थ समझ में आ जाएँ। अनुवाद को प्रवाहमय बनाने की भी इच्छा रही है। कहाँ तक सफलता मिली है, इसको तो पाठक ही बता सकेंगे। अनुवाद के अतिरिक्त शब्दार्थ एवं सूत्रों का व्याकरणिक विश्लेषण भी प्रस्तुत किया गया है। इस विश्लेषण में जिन संकेतों का प्रयोग किया गया है, उनका संकेत सूची में देख कर समझा जा सकता है। यह आशा की जाती है कि प्राकृत को व्यवस्थित रूप से सीखने में सहायता मिलेगी तथा व्याकरण के विभिन्न नियम सहज में ही सीखे जा सकेंगे। यह सर्व विदित है कि किसी भी भाषा को सीखने के लिए व्याकरण का ज्ञान अत्यावश्यक है। प्रस्तुत सूत्र एवं उनके व्याकरणिक विश्लेषण से व्याकरण के साथ-साथ शब्दों के प्रयोग भी सीखने में मदद मिलेगी। शब्दों की व्याकरण और उनका अर्थपूर्ण प्रयोग दोनों ही भाषा सीखने के आधार होते हैं। अनुवाद

एवं व्याकरणिक विश्लेषण जैसा भी बन पाया है पाठकों के समक्ष है। पाठकों के सुझाव मेरे लिए बहुत ही काम के होंगे।

आचारांग चयनिका का विषय ठीक प्रकार से समझ में आ सके, इसके लिए इस संस्करण में चार टिप्पण दिए गये हैं। वे इस प्रकार हैं :

(1) द्रव्य-पर्याय,
(2) जीव अथवा आत्मा,
(3) लोक और
(4) कर्म-क्रिया।

आचारांग चयनिका के सूत्रों को छह भागों में विभक्त किया गया है। पुस्तक के अन्त में प्रत्येक भाग की रूपरेखा सूत्रों सहित दी गई है। ये छह भाग इस प्रकार है:—

1. आचारांग की दार्शनिक पृष्ठ भूमि और धर्म का स्वरूप।
2. मूर्च्छित मनुष्य की अवस्था।
3. मूर्च्छा कैसे टूट सकती है।
4. जीवन-विकास के सूत्र।
5. जागृत मनुष्य की अवस्था।
6. महावीर का साधनामय जीवन।

आभार :

आचारांग-चयनिका के लिए मुनि जम्बूविजयजी द्वारा सम्पादित आचारांग के संस्करण का उपयोग किया गया। इसके

लिए मुनि जम्बूविजयजी के प्रति अपन कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। आचारांग का यह संस्करण श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई से सन् 1977 में प्रकाशित हुआ है।

आगम के प्रकाण्ड विद्वान् महोपाध्याय श्री विनयसागरजी ने आचारांग-चयनिका का प्राक्कथन लिखने की स्वीकृति प्रदान की, इसके लिए मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूँ।

मेरे विद्यार्थी डॉ. श्यामराव व्यास, दर्शन-विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर का आभारी हूँ, जिन्होंने इस पुस्तक के हिन्दी अनुवाद एवं उसकी प्रस्तावना को पढ़कर उपयोगी सुझाव दिए। डॉ. प्रेम सुमन जैन, जैन-विद्या एवं प्राकृत विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, डॉ. उदयचन्द जैन, जैन-विद्या एवं प्राकृत विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, श्री मानमल कुदाल, आगम अहिंसा-समता एवं प्राकृत संस्थान, उदयपुर तथा डॉ. हुकम-चन्द जैन, जैन-विद्या एवं प्राकृत विभाग, सुखाड़िया विश्वविद्यालय उदयपुर के सहयोग के लिए भी आभारी हूँ।

मेरी धर्म-पत्नी श्रीमती कमलादेवी सोगाणी ने इस पुस्तक को तैयार करने में जो अनेक प्रकार से सहयोग दिया, उसके लिए आभार प्रकट करता हूँ।

इस पुस्तक के द्वितीय संस्कृत को प्रकाशित करने के लिए प्राकृत-भारती अकादमी, जयपुर के सचिव श्री देवेन्द्रराजजी मेहता एवं

संयुक्त-सचिव महोपाध्याय श्री विनयसागरजी ने जो व्यवस्था की है, उसके लिये उनका हृदय से आभार प्रकट करता हूँ।

एम. एल, प्रिण्टर्स, जोधपुर को सुन्दर छपाई के लिए धन्यवाद देता हूँ।

कमलचन्द सोगाणी

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष दर्शन-विभाग
मोहनलाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय
उदयपुर (राजस्थान)

आचारांग - चयनिका

आचारांग - चयनिका

1 सुयं मे आउसं ! तेणं भगवया एवमक्खायं—इहमेगेसिं णो सण्णा भवति । तं जहा—

पुरत्थिमातो वा दिसातो आगतो अहमंसि,
दाहिणाओ वा दिसाओ आगतो अहमंसि,
पच्चत्थिमातो वा दिसातो आगतो अहमंसि,
उत्तरातो वा दिसातो आगतो अहमंसि,
उड्ढातो वा दिसातो आगतो अहमंसि,
अधेदिसातो वा आगतो अहमंसि,

अन्नतरीतो दिसातो वा अणु-दिसातो वा आगतो अहमंसि । एवमेगेसिं णो णातं भवति—अत्थि मे आया उववाइए, णत्थि मे आया उववाइए, के अहं आसी, के वा इओ चुते पेच्चा भविस्सामि ।

आचारांग - चयनिका

1. हे आयुष्मन् (चिरायु)! मेरे द्वारा (यह) सुना हुआ (है) (कि) उन भगवान् के द्वारा इस प्रकार (यह) कहा गया (है)—यहाँ कई (मनुष्यों) में (यह) होश नहीं होता है। जैसे—

मैं पूरबी दिशा से आया हूँ,
या मैं दक्षिण दिशा से आया हूँ,
या मैं पश्चिमी दिशा से आया हूँ,
या मैं उत्तर दिशा से आया हूँ,
या मैं ऊपर की दिशा से आया हूँ,
या मैं नीचे की दिशा से आया हूँ,
या (मैं) अन्य ही दिशाओं से (आया हूँ),
या मैं ईशान कोण आदि दिशाओं से आया हूँ।

इसी प्रकार कई (मनुष्यों) के द्वारा (यह) समझा हुआ नहीं होता है (कि) मेरी (स्वयं की) आत्मा पुनर्जन्म लेने वाली है, (या) मेरी (स्वयं की) आत्मा पुनर्जन्म लेने वाली नहीं है, (पिछले जन्म में) मैं कौन था? या (जब) (मैं) (मरकर) इस लोक से अलग हुआ (हूँ), (तो) आगामी जन्म में (मैं) क्या होऊँगा?

2 से ज्जं पुण जाणेज्जा सहसम्मुइयाए परवागरणेणं अण्णेसिं वा अंतिए सोच्चा ।

3 से आयावादी लोगावादी कम्मावादी किरियावादी ।

4 अपरिण्णायकम्मे खलु अयं पुरिसे जो इमाओ दिसाओ वा अणु-दिसाओ वा अणुसंचरति, सव्वाओ दिसाओ सव्वाओ अणुदिसाओ सहेति, अणेगरूवाओ जोणीओ संधेति, विरूवरूवे फासे पडिसंवेदयति ।

5 तत्थ खलु भगवता परिण्णा पवेदिता । इमस्स चेव जीवियस्स

2. इसके विपरीत वह (कोई मनुष्य उपर्युक्त बातों को) (इन तरीकों से) जान लेता है (1) स्वकीय स्मृति के द्वारा (2) दूसरों (अतीन्द्रिय ज्ञानियों) के कथन के द्वारा (3) अथवा दूसरों (अतीन्द्रिय ज्ञानियों के सम्पर्क से समझे हुए व्यक्तियों) के समीप सुनकर।

3. (जो यह जान लेता है कि उसकी आत्मा अमुक दिशा से आई है तथा वह पुनर्जन्म लेने वाली है)

वह (व्यक्ति) (ही) आत्मा को मानने वाला (होता है), (अजीव-पुद्गलादि) लोक को मानने वाला (होता है), कर्म-(बन्धन) को मानने वाला (होता है) (और) (मन-वचन-काय की) क्रियाओं को मानने वाला (होता है)।

4. सचमुच यह मनुष्य (ऐसा है) (कि) (जिसके द्वारा) (मन-वचन-काय की) क्रिया समझी हुई नहीं (है), जो इन दिशाओं से या अनुदिशाओं (ईशान आदि कोणों) से (आकर) (संसार में) परिभ्रमण करता है, (जो) सब दिशाओं से, सभी अनु-दिशाओं से (दुःखों को) सहन करता है, (जो) अनेक प्रकार की योनियों से (अपने को) जोड़ता है, (तथा) (जो) अनेक (मनोहर) रूपों (सुखों) को (एवं) स्पर्शों (दुःखों) को अनुभव करता है।

5. उस (मनुष्य) के लिए ही भगवान् के द्वारा (इस प्रकार) ज्ञान दिया हुआ (है)। (मनुष्य के द्वारा मन-वचन-काय की क्रियाएँ इन बातों के लिए की जाती है) (1) इस ही (वर्त-मान) जीवन (की रक्षा) के लिए, (2) प्रशंसा, आदर तथा पूजा (पाने) के लिए, (3) (भावी) जन्म (की उधेड़-बुन)

परिवंदरण - माणरण - पूयरणाए जाती - मरण - मोयरणाए दुक्खपडिघातहेतुं ।

6 एतावंति सव्वावंति लोगंसि कम्मसमारंभा परिजाणियव्वा भवंति ।

7 जस्सेते लोगंसि कम्मसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे त्ति बेमि ।

8 इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणरण-पूयरणाए जाती-मरण-मोयरणाय दुक्खपडिघातहेउं से सयमेव पुढविसत्थं समारंभति, अण्णेहिं वा पुढविसत्थं समारंभावेति, अण्णे वा पुढविसत्थं समारंभंते समणुजाणति । तं से अहिताए, तं से अबोहीए ।

9 इमस्स चेव जीवितस्स परिवंदरण-माणण-पूयणाए जाती-मरण-मोयणाए दुक्खपडिघातहेतुं से सयमेव उदयसत्थं

के कारण, (वर्तमान में) मरण-(भय) के कारण, तथा मोक्ष (परम-शान्ति) के लिए (और) दुःखों को दूर हटाने के लिए।

6. सम्पूर्ण लोक (जगत) में (मन-वचन-काय की) क्रियाओं के इतने (उपर्युक्त) प्रारम्भ (शुरुआत) समझे जाने योग्य होते हैं।

7. जिसके द्वारा लोक में इन (मन-वचन-काय संबंधी) क्रियाओं के प्रारंभ (शुरुआत) समझे हुए होते हैं, वह ही ज्ञानी (ऐसा) है (जिसके द्वारा) (उपर्युक्त) क्रिया-(समूह) (द्रष्टा भाव से) जाना हुआ (है)। इस प्रकार (मैं) कहता हूँ।

8. (यह दुःख की बात है कि) वह (कोई मनुष्य) इस ही (वर्तमान) जीवन (की रक्षा) के लिए, प्रशंसा, आदर तथा पूजा (पाने) के लिए, (भावी) जन्म (की उधेड़-बुन) के कारण, (वर्तमान में) मरण-(भय) के कारण तथा मोक्ष (परम-शान्ति) के लिए (और) दुःखों को दूर हटाने के लिए स्वयं ही पृथ्वीकायिक जीव-समूह की हिंसा करता है या दूसरों के द्वारा पृथ्वीकायिक जीव-समूह की हिंसा करवाता है, या पृथ्वीकायिक जीव-समूह की हिंसा करते हुए (करने वाले) दूसरों का अनुमोदन करता है। वह (हिंसा कार्य) उस (मनुष्य) के अहित के लिए (होता है), वह (हिंसा-कार्य) उसके लिए अध्यात्महीन बने रहने का (कारण) (होता है)।

9. (यह दुःख की बात है कि) वह (कोई मनुष्य) इस ही (वर्तमान) जीवन (की रक्षा) के लिए, प्रशंसा, आदर तथा

समारंभति, अण्णेहिं वा उदयसत्थं समारंभावेति, अण्णे वा उदयसत्थं समारंभंते समणुजाणति। तं से अहिताए, तं से अबोधीए।

10 इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाती-मरण-मोयणाए दुक्खपडिघातहेतुं से सयमेव अगणिसत्थं समारंभति, अण्णेहिं वा अगणिसत्थं समारंभावेति, अण्णे वा अगणिसत्थं समारंभमाणे समणुजाणति। तं से अहिताए, तं से अबोधीए।

11 इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाती-मरण-मोयणाए दुक्खपडिघातहेतुं से सयमेव वणस्सतिसत्थं

पूजा (पाने) के लिए, (भावी) जन्म (की उधेड़-बुन) के कारण, (वर्तमान में) मरण-(भय) के कारण तथा मोक्ष (परम-शांति) के लिए (और) दु:खों को दूर हटाने के लिए स्वयं ही जलकायिक जीव-समूह की हिंसा करता है या दूसरों के द्वारा जलकायिक जीव-समूह की हिंसा करवाता है या जलकायिक जीव-समूह की हिंसा करते हुए (करने वाले) दूसरों का अनुमोदन करता है। वह (हिंसा-कार्य) उस (मनुष्य) के अहित के लिए (होता है), वह (हिंसा-कार्य) उसके लिए अध्यात्महीन बने रहने का (कारण) (होता है)।

10. (यह दु:ख की बात है कि) वह (कोई मनुष्य) इस ही (वर्तमान) जीवन (की रक्षा) के लिए, प्रशंसा, आदर तथा पूजा (पाने) के लिए (भावी) जन्म (की उधेड़-बुन) के कारण, (वर्तमान में) मरण-(भय) के कारण तथा मोक्ष (परम शान्ति) के लिए (और) दु:खों को दूर हटाने के लिए स्वयं ही अग्निकायिक जीव-समूह की हिंसा करता है या दूसरों के द्वारा अग्निकायिक जीव-समूह की हिंसा करवाता है या अग्निकायिक जीव-समूह की हिंसा करते हुए (करने वाले) दूसरों का अनुमोदन करता है। वह (हिंसा-कार्य) उस (मनुष्य) के अहित के लिए (होता है), वह (हिंसा-कार्य) उसके लिए अध्यात्महीन बने रहने का (कारण) (होता है)।

11. (यह दु:ख की बात है कि) वह (कोई मनुष्य) इस ही (वर्तमान) जीवन (की रक्षा) के लिए, प्रशंसा, आदर तथा पूजा (पाने) के लिए, (भावी) जन्म (की उधेड़-बुन) के कारण, (वर्तमान में) मरण-(भय) के कारण तथा मोक्ष (परम-शान्ति) के लिए (और) दु:खों को दूर हटाने के लिए

समारंभति, अण्णेहिं वा वणस्सतिसत्थं समारंभावेति, अण्णे वा वणस्सतिसत्थं समारंभमाणे समणुजाणति। तं से अहियाए, तं से अबोहीए।

12 से बेमि – इमं पि जातिधम्मयं, एयं पि जातिधम्मयं;
इमं पि वुड्ढिधम्मयं, एयं पि वुड्ढिधम्मयं;
इमं पि चित्तमंतयं, एयं पि चित्तमंतयं;
इमं पि छिण्णं मिलाति, एयं पि छिण्णं मिलाति;
इमं पि आहारगं, एयं पि आहारगं;
इमं पि अणितियं, एयं पि अणितियं;
इमं पि असासयं, एयं पि असासयं;

स्वयं ही वनस्पतिकायिक जीव-समूह की हिंसा करता है या दूसरों के द्वारा वनस्पतिकायिक जीव-समूह की हिंसा करवाता है या वनस्पतिकायिक जीव-समूह की हिंसा करते हुए (करने वाले) दूसरों का अनुमोदन करता है। वह (हिंसा-कार्य) उस (मनुष्य) के अहित के लिए (होता है), वह (हिंसा कार्य) उसके लिए अध्यात्महीन बने रहने का (कारण) (होता है)।

12. वह (मनुष्य और वनस्पतिकायिक जीव की तुलना) मैं कहता हूँ—यह (मनुष्य) भी उत्पत्ति स्वभाव (वाला) (होता है), यह (वनस्पति) भी उत्पत्ति स्वभाव (वाली) (होती है)।
यह (मनुष्य) भी बढ़ोतरी स्वभाव (वाला) (होता है),
यह (वनस्पति) भी बढ़ोतरी स्वभाव (वाली) (होती है)।
यह (मनुष्य) भी चेतना वाला (होता है),
यह (वनस्पति) भी चेतना वाली होती है।
यह (मनुष्य) भी कटा हुआ उदास होता है,
यह (वनस्पति) भी कटी हुई उदास होती है।
यह (मनुष्य) भी आहार करने वाला (होता है),
यह (वनस्पति) भी आहार करने वाली (होती है)।
यह (मनुष्य) भी नाशवान् (होता है);
यह (वनस्पति) भी नाशवान् (होती है)।
यह (मनुष्य) भी हमेशा न रहने वाला (होता है),
यह (वनस्पति) भी हमेशा न रहने वाली (होती है)।
यह (मनुष्य) भी बढ़ने (वाला) और क्षय वाला (होता है),

इमं पि चयोवचइयं, एयं पि चयोवचइयं;
इमं पि विप्परिणामधम्मयं, एयं पि विप्परिणाम-
धम्मयं।

13 इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाती-मरण-मोयणाए दुक्खपडिघायहेतुं से सयमेव तसकायसत्थं समारंभति, अण्णेहि वा तसकायसत्थं समारंभावेति, अण्णे वा तसकायसत्थं समारंभमाणे समणुजाणति। तं से अहिताए, तं से अबोधीए।

14 से बेमि—अप्पेगे अच्चाए वधेंति, अप्पेगे अजिणाए वधेंति, अप्पेगे मंसाए वधेंति, अप्पेगे सोणिताए वधेंति, अप्पेगे हिययाए वधेंति, एवं पित्ताए वसाए पिच्छाए पुच्छाए वालाए सिंगाए

यह (वनस्पति) भी बढ़ने वाली और क्षयवाली (होती है)।
यह (मनुष्य) भी (अवस्था में) परिवर्तन स्वभाव (वाला) (होता है),
यह (वनस्पति) भी (अवस्था में) परिवर्तन स्वभाव (वाली) होती है।

13. (यह दुःख की बात है कि) वह (कोई मनुष्य) इस ही (वर्तमान) जीवन (की रक्षा) के लिए, प्रशंसा, आदर तथा पूजा (पाने) के लिए, (भावी) जन्म (की उधेड़-बुन) के कारण, (वर्तमान में) मरण-(भय) के कारण तथा मोक्ष (परम-शान्ति) के लिए (और) दुःखों को दूर हटाने के लिए स्वयं ही त्रसकाय (दो इन्द्रिय से पाँच इन्द्रियों वाले)–जीव-समूह की हिंसा करता है या दूसरों के द्वारा त्रसकाय–जीव समूह की हिंसा करवाता है या त्रसकाय–जीव-समूह की हिंसा करते हुए (करने वाले) दूसरों का अनुमोदन करता है। वह (हिंसा-कार्य) उस (मनुष्य) के अहित के लिए (होता है), वह (हिंसा-कार्य) उसके लिए अध्यात्महीन बने रहने का (कारण) (होता है)।

14. (प्राणियों का वध क्यों किया जाता है?) (उसको) मैं कहता हूँ—
कुछ मनुष्य पूजा-सत्कार के लिए (प्राणियों का) वध करते हैं, कुछ मनुष्य हरिण आदि के चमड़े के लिए (प्राणियों का) वध करते हैं, कुछ मनुष्य मांस के लिए (प्राणियों का) वध करते हैं, कुछ मनुष्य खून के लिए (प्राणियों का) वध करते हैं, कुछ मनुष्य हृदय के लिए (प्राणियों का) वध करते हैं, इसी प्रकार पित्त के लिए, चर्बी के लिए, पांख के लिए,

विसाणाए दंताए दाढाए नहाए ण्हारुणीए अट्ठिए अट्ठिमिंजाए अट्ठाए अणट्ठाए ।

अप्पेगे हिंसिसु मे त्ति वा, अप्पेगे हिंसंति वा, अप्पेगे हिंसिस्संति वा णे वधेंति ।

15 इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-माणण-पूयणाए जाती-मरण-मोयणाए दुक्खपडिघातहेतुं से सयमेव वाउसत्थं समारभति, अण्णेहिं वा वाउसत्थं समारभावेति, अण्णे वा वाउसत्थं समारभंते समणुजाणति । तं से अहियाए, तं से अबोधीए ।

16 से त्तं संबुज्झमाणे आयाणीयं समुट्ठाए । सोच्चा भगवतो

पूँछ के लिए, बाल के लिए, सींग के लिए, हाथी आदि के दाँत के लिए, दाँत के लिए, दाढ के लिए, नख के लिए, स्नायु के लिए, हड्डी के लिए, हड्डी के भीतरी रस के लिए, किसी (और) उद्देश्य के लिए (तथा) विना किसी उद्देश्य के (व्यर्थ ही) (प्राणियों का वध करते हैं)।

कुछ मनुष्य, (उन्होंने) मेरे (स्वजन की) हिंसा संभवत: की थी, इस प्रकार (कहकर) (उनका वध करते हैं)। कुछ मनुष्य, (यह मेरे स्वजन की) संभवत: (हिंसा करता है), (यह) (कहकर) (उसकी) हिंसा करते हैं, कुछ मनुष्य, (ये मेरे स्वजन की) संभवत: हिंसा करेंगे, (यह कहकर) उनका वध करते हैं।

15. (यह दु:ख की बात है कि) वह (कोई मनुष्य) इस ही (वर्तमान) जीवन (की रक्षा) के लिए, प्रशंसा, आदर, तथा पूजा (पाने) के लिए, (भावी) जन्म (की उधेड़-बुन) के कारण, (वर्तमान में) मरण-(भय) के कारण तथा मोक्ष (परम-शान्ति) के लिए (और) दु:खों को दूर हटाने के लिए स्वयं ही वायुकायिक जीव-समूह की हिंसा करता है या दूसरों के द्वारा वायुकायिक जीव-समूह की हिंसा करवाता है या वायुकायिक जीव-समूह की हिंसा करते हुए (करने वाले) दूसरों का अनुमोदन करता है। वह (हिंसा-कार्य) उस (मनुष्य) के अहित के लिए (होता है), वह (हिंसा-कार्य) उसके लिए अध्यात्महीन बने रहने का (कारण) (होता है)।

16. (इसलिये) वह (अहिंसा-साधक) उस ग्रहण किये जाने योग्य (संयम) को समझता हुआ उठे। भगवान् से (या) साधुओं से

अणगाराणं इहमेगेसिं णातं भवति— एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णिरए।

17 तं परिण्णाय मेहावी णेव सयं छज्जीवणिकायसत्थं समारंभेज्जा, णेवऽण्णेहिं छज्जीवणिकायसत्थं समारंभावेज्जा, णेवऽण्णे छज्जीवणिकायसत्थं समारंभंते समणुजाणेज्जा।

जस्सेते छज्जीवणिकायसत्थसमारंभा परिण्णाया भवंति से हु मुणी परिण्णायकम्मे त्ति बेमि।

18 अट्टे लोए परिजुण्णे दुस्संबोधे अविजाणए। अस्सि लोए पव्वहिए।

19 जाए सद्धाए णिक्खंतो तमेव अणुपालिया विजहित्ता विसोत्तियं।

सुनकर कुछ (मनुष्यों) के द्वारा यहाँ (यह) सीखा हुआ होता है (कि) यह (हिंसा-कार्य) निश्चय ही बन्धन में (डालने वाला है), यह (हिंसा-कार्य) निश्चय ही मूर्च्छा में (पटकने वाला है), यह (हिंसा-कार्य) निश्चय ही अनिष्ट (अमंगल) में (धकेलने वाला है) (तथा) यह (हिंसा-कार्य) निश्चय ही नरक में (ले जाने वाला है)।

17. उस (हिंसा-कार्य के परिणामों) को समझकर बुद्धिमान (मनुष्य) स्वयं छः-जीव-समूह, प्राणी-समूह की कभी भी हिंसा नहीं करता है, (तथा) दूसरों के द्वारा छः-जीव-समूह, प्राणी-समूह की हिंसा कभी भी नहीं करवाता है, (तथा) छः-जीव-समूह, प्राणी-समूह की हिंसा करते हुए (करने वाले) दूसरों का कभी भी अनुमोदन नहीं करता है।

जिसके द्वारा (उपर्युक्त) इन छः-जीव-समूह, प्राणी-समूह के हिंसा-कार्य समझे हुए होते हैं वह ही ज्ञानी (ऐसा) (है) (जिसके द्वारा) (उपर्युक्त) हिंसा-कार्य (द्रष्टा भाव से) जाना हुआ है इस प्रकार (मैं) कहता हूँ।

18. (मूर्च्छित) मनुष्य (अशांति से) पीड़ित (होता है), (समता भाव से) दरिद्र (होता है), (उसको) (अहिंसा पर आधारित मूल्यों का) ज्ञान देना कठिन (होता है) (तथा) (वह) (अध्यात्म को) समझने वाला नहीं (होता है)। इस लोक में (मूर्च्छित मनुष्य) अति दुःखी (रहता है)।

19. जिस प्रबल इच्छा से (मनुष्य) (अहिंसा-पथ पर) निकला हुआ (है), उस (प्रबल इच्छा) को ही बनाए रखकर (तथा) हिंसात्मक चिन्तन को छोड़कर (वह) (चलता जाय)।

20 पणया वीरा महावीहिं ।

21 लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं । से बेमि-णेव सयं लोगं अब्भाइक्खेज्जा, णेव अत्ताणं अब्भाइक्खेज्जा । जे लोगं अब्भाइक्खति से अत्ताणं अब्भाइक्खति, जे अत्ताणं अब्भाइक्खति से लोगं अब्भाइक्खति ।

22 जे गुणे से आवट्टे, जे आवट्टे से गुणे ।

उड्ढं अहं तिरियं पाईणं पासमाणे रूवाइं पासति, सुणमाणे सद्दाइं सुणेति ।

उड्ढं अहं तिरियं पाईणं मुच्छमाणे रूवेसु मुच्छति, सद्देसु यावि ।

एस लोगे वियाहिते । एत्थ अगुत्ते अणाणाय पुणो पुणो

20. महापथ (अहिंसा-समता पथ) पर झुके हुए वीर (होते हैं)।

21. (अर्हत् की) आज्ञा से प्राणी समूह को अच्छी तरह से जान-कर (मनुष्य) (उसको) निर्भय (बना दे) अर्थात् उसको अभय दान दे।

मैं कहता हूं—(व्यक्ति) स्वयं प्राणी-समूह पर (उसके न होने का) झूठा आरोप कभी न लगाये, न ही निज पर (अपने न होने का) झूठा आरोप कभी लगाये। जो प्राणी-समूह पर (उसके न होने का) झूठा आरोप लगाता है, वह निज पर (अपने न होने का) झूठा आरोप लगाता है, जो निज पर (अपने न होने का) झूठा आरोप लगाता है, वह प्राणी-समूह पर (उसके न होने का) झूठा आरोप लगाता है।

22. जो दुश्चरित्रता (है), वह (अशांति में) चक्कर काटना (है); जो (अशान्ति में) चक्कर काटना (है), वह (ही) दुश्च-रित्रता (है)।

(द्रष्टाभाव से) देखता हुआ (मनुष्य) ऊपर की ओर, नीचे की ओर, तिरछी दिशा में और सामने की ओर (स्थित) रूपों को (केवल) देखता है, (द्रष्टाभाव से) सुनता हुआ (मनुष्य) शब्दों को (केवल) सुनता है। (किन्तु) मूर्च्छित होता हुआ (मनुष्य) ऊपर की ओर, नीचे की ओर, तिरछी दिशा में और सामने की ओर (स्थित) रूपों में मूर्च्छित होता है, और शब्दों में भी (मूर्च्छित होता है)।

यह (मूर्च्छा) (ही) संसार कहा गया (है)। यहाँ पर (जो) मूर्च्छित (मनुष्य) (है), (वह) (अर्हत्-जीवन-मुक्त) की आज्ञा में नहीं (है)। (जो) बार-बार दुश्चरित्रता के स्वाद में (लीन है) (जो) कुटिल आचरण में (दक्ष है), जो प्रमादी

गुणासाते वंकसमायारे पमत्ते गारमावसे ।

23 णिज्झाइत्ता पडिलेहित्ता पत्तेयं परिणिव्वाणं सव्वेंसि पाणाणं सव्वेंसि भूताणं सव्वेंसि जीवाणं सव्वेंसि सत्ताणं अस्सातं अपरिणिव्वाणं महब्भयं दुक्खं ति बेमि ।

तसंति पाणा पदिसो दिसासु य ।
तत्थ तत्थ पुढो पास आतुरा परितावेंति ।
संति पाणा पुढो सिता ।

24 जे अज्झत्थं जाणति से बहिया जाणति, जे बहिया जाणति से अज्झत्थं जाणति । एतं तुलमण्णेंसि ।

25 एत्थं पि जाण उवादीयमाणा, जे आयारे ण रमंति आरंभमाणा विणयं वयंति

(आसक्ति-युक्त) (है), (वह) (वास्तव में) (मूर्च्छा रूपी) घर में (ही) निवास करता है।

23. प्रत्येक (जीव) की शान्ति को विचार करके और देख करके (तुम हिंसा को छोड़ो), (चूँकि) सब प्राणियों के लिए, सब जन्तुओं के लिए, सब जीवों के लिए, सब चेतनवानों के लिए पीड़ा, अशान्ति (है), महा भयंकर (है), दुःख-युक्त (है)। इस प्रकार (मैं) कहता हूं।

(संसार में) प्राणी (सब) दिशाओं में तथा प्रत्येक स्थान पर भयभीत रहते हैं।

(चूंकि) तू देख, प्रत्येक स्थान पर मूर्च्छित (मनुष्य) अलग-अलग (प्रकार से) (प्राणियों को) दुःख पहुंचाते हैं। (और) (ये) प्राणी भी अलग-अलग (प्रकार के) होते हैं।

24. जो अध्यात्म (समतामयी परम-आत्मा) को जानता है, वह बाहर की ओर (स्थित) (सांसारिक विषमताओं) को समझता हैं; जो बाहर की ओर (स्थित) (सांसारिक विषमताओं) को समझता है, वह अध्यात्म (समतामयी परम-आत्मा) को जानता है। (जीवन के सार का) खोज करने वाला (मनुष्य) इस (आध्यात्मिक) तराजू को (समझे)।

25. यहां (तुम) जानो कि यद्यपि (कई मनुष्य) (गुरु के) निकट (अहिंसा-समता को) समझते हुए (स्थित हैं), (फिर भी) (उनमें से) जो आचार (अहिंसा-समता) में ठहरते नहीं हैं, (आश्चर्य!) (वे) हिंसा करते हुए (भी) आचार (अहिंसा-समता) का (दूसरों के लिए) कथन करते हैं। (इस तरह से) (उनके द्वारा) स्वच्छन्दता प्राप्त की गई (है) (और) (वे) अत्यन्त दोष (आसक्ति) में डूबे हुए हैं। (इस प्रकार से) हिंसा

छंदोवणीया अज्भोववण्णा
आरंभसत्ता पकरेंति संगं

से वसुमं सव्वसमण्णागतपण्णाणेणं अप्पाणेणं अकरणिज्जं पावं कम्मं णो अण्णेसि ।

26 जे गुणे से मूलट्ठाणे, जे मूलट्ठाणे से गुणे ।
इति से गुणट्ठी महता परितावेण वसे पमत्ते ।

अहो य राओ य परितप्पमाणे कालाकालसमुट्ठायी संजोगट्ठी अट्ठालोभी आलुंपे सहसक्कारे विणिविट्ठचित्ते एत्थ सत्थे पुणो पुणो ।

27 अभिकंतं च खलु वयं सपेहाए ततो से एगया मूढभावं जणयंति ।

जेहिं वा सद्धि संवसति ते व णं एगदा णियगा पुव्वि

में आसक्त (व्यक्ति) कर्म-बन्धन (अशान्ति) को उत्पन्न करते हैं।

(किन्तु) वह अनासक्त (व्यक्ति) जो पूरी तरह से समता को प्राप्त निज प्रज्ञा के द्वारा (जीता है), (वह) अकरणीय हिंसक कर्म (पूर्णतया छोड़ देता है) तथा (वह) (हिंसा के साधनों की) खोज करने वाला नहीं (होता है)।

26. जो इन्द्रियासक्ति (है), वह (अशान्ति का) आधार (है); जो (अशान्ति का) आधार (है), वह (ही) इन्द्रियासक्ति (है)। इस प्रकार वह इन्द्रिय-विषयाभिलाषी (व्यक्ति) महान दुःख से (जीवन-यात्रा चलाता है) (तथा) (सदा) प्रमाद (मूर्च्छा) में वास करता है।

(वह) दिन में तथा रात में भी दुखी होता हुआ (जीता है); (वह) काल-अकाल में (तुच्छ वस्तुओं की प्राप्ति के लिए) प्रयत्न करने वाला (बना रहता है); (वह) (केवल) (स्वार्थ-पूर्ण) संबंध का अभिलाषी (होता है); (वह) धन का लालची (होता है); (वह) (व्यवहार में) ठगने वाला (होता है); (वह) बिना विचार किए (कार्यों को) करने वाला (होता है); (वह) आसक्त चित्तवाला (होता है); (वह) यहाँ पर (समस्याओं के समाधान के लिए) बार-बार शस्त्रों (हिंसा) को (काम में लेता है)।

27. वास्तव में (अपनी) बीती हुई आयु को ही देखकर (मनुष्य व्याकुल होता है), (और) बाद में (बुढ़ापे में) उसके (मनोभाव) एक समय (उसमें) (मूर्खतापूर्ण) अवस्था उत्पन्न कर देते हैं।

और जिनके साथ (वह) रहता है, एक समय वे ही आत्मीय-

परिवदंति, सो वा ते णियगे पच्छा परिवदेज्जा। णालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा, तुमं पि तेसिं णालं ताणाए वा सरणाए वा। से ण हासाए, ण किड्डाए, ण रतीए ण विभूसाए।

28 इच्चेवं समुट्ठिते अहोविहाराए अंतरं च खलु इमं सपेहाए धीरे मुहुत्तमवि णो पमादए। वओ अच्चेति जोव्वणं च।

29 जीविते इह जे पमत्ता से हंता छेत्ता भेत्ता लुंपित्ता विलुंपित्ता उद्दवेत्ता उत्तासयित्ता अकडं करिस्सामि त्ति मण्णमाणे।

30 एवं जाणित्तु दुक्खं पत्तेयं सातं अणभिक्कंतं च खलु वयं सपेहाए खणं जाणाहि पंडिते!

जाव सोतपण्णाणा अपरिहीणा जाव णेत्तपण्णाणा अपरि-

(जन) उसको पहले बुरा-भला कहते हैं, पीछे वह भी उन आत्मीय-(जनों) को बुरा-भला कहता है। (अतः तुम समझो कि) वे तुम्हारे सहारे के लिए या सहायता के लिए पर्याप्त नहीं (हैं)। (ध्यान रखो) तुम भी उनके सहारे के लिए या सहायता के लिए पर्याप्त नहीं (हो)। (बुढ़ापे की अवस्था में) वह (मनुष्य) मनोरंजन के लिए, क्रीड़ा के लिए, प्रेम के लिए तथा (प्रचलित)सजवाट के लिए(उपयुक्त)नहीं(रहता है।)

28. इस प्रकार (मनुष्य) (बुढ़ापे को समझकर) आश्चर्यकारी संयम के लिए सम्यक्-प्रयत्नशील (बने)। (अतः) (सचमुच ही) इस अवसर (वर्तमान मनुष्य-जीवन के संयोग) को देखकर ही धीर (मनुष्य) क्षणभर के लिए भी प्रमाद न करे। (समझो) आयु बीतती है, यौवन भी (बीतता है)। (अतः मनुष्य प्रमाद न करे)।

29. इस जीवन में जो (व्यक्ति) प्रमाद-युक्त (होते हैं), (वे आयु व्यतीत होने को समझ नहीं पाते हैं), (अतः) (वह) (प्रमादी व्यक्ति) (जीवों को) मारने वाला, छेदने वाला, भेदने वाला, (उनकी) हानि करने वाला, (उनका) अपहरण करने वाला, (उन पर) उपद्रव करने वाला (तथा) (उनको) हैरान करने वाला (होता है)। कभी नहीं किया गया (है) (ऐसा) (मैं) करूँगा, इस प्रकार विचारता हुआ (प्रमादी व्यक्ति हिंसा पर उतारू हो जाता है)।

30. हे पण्डित ! इस प्रकार प्रत्येक (जीव) के सुख-दुःख को समझकर (और) (अपनी) आयु को ही सचमुच न बीती हुई देखकर, (तू) उपयुक्त अवसर को जान।
जब तक श्रवणेन्द्रिय की ज्ञान-(शक्तियाँ) कम नहीं (होती हैं), जब तक चक्षु-इन्द्रिय की ज्ञान-(शक्तियाँ) कम नहीं (होती हैं),

हीणा जाव घाणपण्णाणा अपरिहीणा जाव जीहपण्णाणा अपरिहीणा जाव फासण्णाणा अपरिहीणा, इच्चेतेहिं विरूवरूवेहिं पण्णाणेहिं अपरिहीणेहिं आयट्ठं सम्मं समणुवासेज्जासि त्ति बेमि ।

31 अरतिं आउट्टे से मेधावी खणंसि मुक्के ।

32 अणाणाए पुट्ठा वि एगे णियट्टंति मंदा मोहेण पाउडा ।

33 विमुक्का हु ते जणा जे जणा पारगामिणो, लोभमलोभेण दुगुंछमाणे लद्धे कामे णाभिगाहति ।

34 णो हीणे, णो अतिरित्ते ।

35 जीवियं पुढो पियं इहमेगेसिं माणवाणं खेत्त-वत्थु ममायमाणाणं ।

ण एत्थ तवो वा दमो वा णियमो वा दिस्सति ।

36 इणमेव णावकंखंति जे जणा धुवचारिणो ।
जाती—मरणं परिण्णाय चर संकमणे दढे ।।
णत्थि कालस्स णागमो ।

जब तक घ्राणेन्द्रिय की ज्ञान-(शक्तियाँ) कम नहीं (होती हैं),
जब तक रसनेन्द्रिय की ज्ञान-(शक्तियाँ) कम नहीं (होती हैं),
जब तक स्पर्शनेन्द्रिय की ज्ञान-(शक्तियाँ) कम नहीं (होती हैं),
(तब तक) इन इस प्रकार अनेक भेद (वाली) अक्षीण (इन्द्रिय) ज्ञान-(शक्तियों) द्वारा (तू) उचित प्रकार से आत्महित को सिद्ध कर ले। इस प्रकार (मैं) कहता हूं।

31. (जो) बेचैनी को (ही) समाप्त कर देता है, वह प्रज्ञावान् (होता है); (ऐसा व्यक्ति) पल भर में बन्धन रहित (हो जाता है)।

32. (आध्यात्मिक गुरु की) अनाज्ञा से ग्रस्त कुछ (साधक) ही (अन्तर्यात्रा में) रुक जाते हैं। (ऐसे) (साधक) मूर्ख (हैं) (और) आसक्ति से घिरे हुए (हैं)।

33. वे मनुष्य निश्चय ही (दुःख)-मुक्त हैं, जो मनुष्य (विषमताओं के) पार पहुँचने वाले (हैं)। (साधक) अति-तृष्णा को अतृष्णा से झिड़कता हुआ (आगे बढ़ता है), (और) प्राप्त हुए विषय भोगों का (भी) सेवन नहीं करता है।

34. (कोई) नीच नहीं (है). (कोई) उच्च नहीं (है)।

35. भूमि व धन-दौलत की इच्छा करते हुए कुछ व्यक्तियों के लिए यहाँ अलग-अलग (प्रकार का) जीवन प्रिय (है)। उन (व्यक्तियों) में तप, आत्म-नियन्त्रण और सीमा-बन्धन नहीं देखा जाता है।

36. जो लोग परम शांति के इच्छुक (हैं) (वे) इस (महत्व से उत्पन्न व्याकुलता) को बिल्कुल नहीं चाहते हैं।
(अतः) (तू) जन्म-मरण (अशान्ति) को जानकर दृढ़-संयम पर चल।
मृत्यु के लिए (किसी क्षण भी) न आना नहीं है।

सव्वे पाणा पिआउया सुहसाता दुक्खपडिकूला अप्पियवधा पियजीविणो जीवितुकामा । सव्वेसिं जीवितं पियं ।

37 तं परिगिज्झ दुपयं चउप्पयं अभिजुंजियाणं संसिंचियाणं तिविधेण जा वि से तत्थ मत्ता भवति अप्पा वा बहुगा वा से तत्थ गढिते चिट्ठति भोयणाए । ततो से एगदा विप्परिसिट्ठं संभूतं महोवकरणं भवति । तं पि से एगदा दायादा विभयंति, अदत्तहारो वा सेऽवहरति, रायाणो वा से विलुंपंति, णस्सति वा से, विणस्सति वा से, अगारदाहेण वा से डज्झति ।

इति से परस्सऽट्ठाए कूराइं कम्माइं बाले पकुव्वमाणे तेण दुक्खेण मूढे विप्परियासमुवेति ।

मुणिणा हु एतं पवेदितं ।
अणोहंतरा एते, णो य ओहं तरित्तए ।
अतीरंगमा एते, णो य तीरं गमित्तए ।
अपारंगमा एते, णो य पारं गमित्तए ।

सब (ही) प्राणी (ऐसे हैं) (जिनको) (अपने) आयु प्रिय (होते हैं), (जिनके लिए) (अपने) सुख अनुकूल (होते हैं), (अपने) दुःख प्रतिकूल (होते हैं), (अपने) वध अप्रिय (होते हैं), (अपनी) जिन्दा रहने वाली (स्थितियाँ) प्रिय होती हैं और (जो) अपने जीवन के इच्छुक (होते हैं)। सब (प्राणियों) के लिए जीवन प्रिय (होता है)।

37. तो (व्यक्ति) मनुष्य और पशु को रखकर, (उनको) कार्य में लगाकर तीनों प्रकार (किसी मनुष्य, पशु और स्वयं) के (साधनों) द्वारा (अर्थ को) बढ़ाकर (जीता है)। जो भी उसके पास उस अवसर पर अल्प या बहुत (धन की) मात्रा होती है, उसमें वह आसक्त रहता है (और) भोग के लिए (उस अर्थ को काम लेता है)।

एक समय (भोग के) बाद में बचा हुआ, उपलब्ध (धन) उसके लिए महान् साधन हो जाता है। उसको भी एक समय उसके उत्तराधिकारी बाँट लेते हैं या चोर उसका अपहरण कर लेता है या राजा उसको छीन लेते हैं या वह नष्ट हो जाता है, या वह बर्बाद हो जाता है या वह घर के दहन से जला दिया जाता है।

इस प्रकार अज्ञानी दूसरे के प्रयोजन के लिए क्रूर कर्मों को करता हुआ उनके द्वारा (प्राप्त) दुःख से व्याकुल हुआ विपरीतता (अशांति) को प्राप्त होता है।

ज्ञानी के द्वारा ही यह कहा गया (है)।

ये (अशान्ति को प्राप्त करने वाले) पार जाने में असमर्थ (होते हैं)—संसाररूपी प्रवाह में तैरने के लिये बिल्कुल (समर्थ) नहीं (हैं)। ये तीर पर जाने वाले नहीं (हैं)—तीर पर जाने के लिए बिल्कुल (समर्थ) नहीं (होते हैं)। ये पार

आयाणिज्जं च आदाय तम्मि ठाणे ण चिट्ठति ।
वितहं पप्प खेतण्णे तम्मि ठाणम्मि चिट्ठति ।

38 उद्देसो पासगस्स णत्थि ।
बाले पुण णिहे कामसमणुण्णे असमितदुक्खे दुक्खी दुक्खाणमेव आवट्टं अणुपरियट्टति त्ति बेमि ।

39 आसं च छंदं च विगिंच धीरे ।
तुमं चेव तं सल्लमाहट्टु ।
जेण सिया तेण णो सिया ।
इणमेव णावबुज्झंति जे जणा मोहपाउडा ।

40 उदाहु वीरे—अप्पमादो महामोहे, अलं कुसलस्स पमादेणं, संतिमरणं सपेहाए, भेउरधम्मं सपेहाए। णालं पास। अलं

जाने वाले नहीं (हैं)—पार जाने के लिए बिल्कुल (समर्थ) नहीं (होते हैं)। ग्रहण किए जाने के योग्य को ग्रहण करके (धूर्त व्यक्ति) उस स्थान पर नहीं ठहरता है। असत्य को प्राप्त करके धूर्त (व्यक्ति) उस स्थान पर ठहरता है।

38. द्रष्टा (समतादर्शी) के लिए (कोई) उपदेश (शेष) नहीं है। और अज्ञानी (विषमतादर्शी) आसक्ति-युक्त (होता है), भोगों का अनुमोदन करने वाला (होता है), अपरिमित दुःख के कारण दुःखी (होता है), (तथा) दुःखों के ही भँवर में फिरता रहता है। इस प्रकार (मैं) कहता हूँ।

39. हे धीर! (तू) (मनुष्यों के प्रति) आशा को और (वस्तुओं की) इच्छा को छोड़।

तू ही उस (आशा और इच्छारूपी) विष को ग्रहण करके (दुःखी होता है)।

जिस (वस्तु) के कारण (सुख-दुःख) होता है, उस (वस्तु) के कारण (सुख-दुःख) नहीं (भी) होता है। (ऐसा सोचने-समझने से मनुष्य पर से स्व की ओर लौट आता है)।

जो मनुष्य आसक्ति से ढके हुए (हैं), (वे) इस (बात) को ही नहीं समझते (हैं)।

40. महावीर ने कहा: (यदि कहीं) घोर आसक्ति में (डूबने का) (आकर्षण) (उपस्थित) (हो जाए), (तो) (उस) (समय) (जो) (व्यक्ति) प्रमाद (आसक्ति)-रहित (रहता है), (वह) (प्रशंसनीय) (होता है); कुशल (व्यक्ति) के लिए (ऐसा) (होना) पर्याप्त (है) (कि) (वह) (संसार में) प्रमाद (आसक्ति) (के बिना) (रहता है); शान्ति और मरण को देखकर (तथा) (शरीर के) नश्वर स्वभाव को देखकर (कोई भी व्यक्ति आसक्ति में न डूबे)। तू देख, (कि)

ते एतेहिं। एतं पास मुणि ! महब्भयं । णातिवातेज्ज कंचणं।

41 एस वीरे पसंसिते जे ण णिव्विज्जति आदाणाए।

42 लाभो त्ति ण मज्जेज्जा, अलाभो त्ति ण सोएज्जा, बहुं पि लद्धुं ण णिहे। परिग्गहाओ अप्पाणं अवसक्केजा। अण्णहा णं पासए परिहरेज्जा।

43 कामा दुरतिक्कमा। जीवियं दुप्पडिबूहगं। कामकामी खलु अयं पुरिसे, से सोयति जूरति तिप्पति पिड्डति परितप्पति।

44 आयतचक्खू लोगविपस्सी लोगस्स अहेभागं जाणति, उड्ढं भागं जाणति, तिरियं भागं जाणति, गढिए अणुपरियट्टमाणे। संधि विदित्ता इह मच्चिएहिं,
एस वीरे पसंसिते जे बद्धे पडिमोयए।

45 कासंकसे खलु अयं पुरिसे, बहुमायी, कडेण मूढे, पुणो तं

(आसक्ति से) कोई लाभ नहीं (है)। (तू समझ कि) (संसार में)इन (विषयों) से तेरे लिए कोई लाभ नहीं (है)। हे ज्ञानी! (तू) इस (बात) को सीख (कि) (आसक्ति) महाभंयकर (होती है)। (हे मनुष्य!) (तू) किसी भी तरह (प्राणियों को) मत मार।

41. वह वीर प्रशंसित (होता है), जो संयम से दूर नहीं होता है।

42. (यदि) लाभ (है), (तो) मद न कर; (यदि) हानि (है), (तो) शोक मत कर; बहुत भी प्राप्त करके आसक्ति-युक्त मत (बन)। अपने को परिग्रह से दूर रख। द्रष्टा उस (संयम के योग्य परिग्रह) का विपरीत रीति (अनासक्त भाव) से परि-भोग करता है।

43. इच्छाएँ दुर्जय (होती हैं)। जीवन बढ़ाया नहीं जा सकता (है)। यह मनुष्य इच्छाओं (की तृप्ति) का ही इच्छुक (होता है), (इच्छाओं के तृप्त न होने पर) वह शोक करता है, क्रोध करता है, रोता है, (दूसरों को) सताता है (और) (उनको) नुकसान पहुँचाता है।

44. (जिसकी) आँखें विस्तृत (होती हैं), (वह) (सम्पूर्ण) लोक को देखने वाला (होता है)। (वह) लोक के नीचे भाग को जानता है। ऊर्ध्व भाग को जानता है,तिरछे भाग को जानता है, आसक्त (मनुष्य)(संसार में) फिरता हुआ (दुःखी)(होता है)। (अतः) यहां अवसर को जान कर मनुष्य के द्वारा (इच्छाओं से मुक्त होने का प्रयत्न किया जाना चाहिए), जो (इच्छाओं से) बँधे हुओं को मुक्त करता है,वह वीर प्रशंसित(होता है)।

45. सचमुच यह मनुष्य संसार में आसक्त (है), (यह) अति कपटी (है), (आसक्ति) के कारण (यह) अज्ञानी (बना है), इसलिए फिर (विषयों की) लोलुपता को करता है (और) (इस तरह)

करेति लोभं, वेरं वड्ढेति अप्पणो ।

46 जे ममाइयमतिं जहाति से जहाति ममाइतं ।
से हु दिट्ठपहे मुणी जस्स णत्थि ममाइतं ।

47 णारतिं सहती वीरे, वीरे णो सहती रतिं ।
जम्हा अविमणे वीरे तम्हा वीरे ण रज्जति ॥

48 जे अणण्णदंसी स अणण्णारामे, जे अणण्णारामे से अणण्णदंसी ।

49 उड्ढं अहं तिरियं दिसासु, से सव्वतो
सव्वपरिण्णाचारी ण लिप्पति छणपदेण वीरे ।

50 से मेधावी जे अणुग्घातणस्स खेत्तण्णे जे य बंधपमोक्ख-
मण्णेसी ।

(यह) (संसार में) अपने लिए दुश्मनी बढ़ाता है।

46. जो ममतावाली वस्तु-बुद्धि को छोड़ता है, वह ममतावाली वस्तु को छोड़ता है; जिसके लिए (कोई) ममतावाली वस्तु नहीं है, वह ही (ऐसा) ज्ञानी है, (जिसके द्वारा) (अध्यात्म)-पथ जाना गया है।

47. वीर (ऊर्ध्वगामी ऊर्जावाला व्यक्ति) (मूल्यों से) विकर्षण (अलगाव) को (समाज के जीवन में) सहन नहीं करता है, (तथा) वीर (पशु-प्रवृत्तियों के प्रति) आकर्षण (लगाव) को भी (समाज के जीवन में) सहन नहीं करता है। चूंकि वीर (किसी भी विपरीत परिस्थिति में) खिन्न नहीं (होता है), इसलिए वीर (किसी भी अनुकूल परिस्थिति में) खुश नहीं होता है। (वास्तव में वह समताभाव में स्थित रहता है)।

48. जो (मनुष्य) समतामयी (आत्मा) के दर्शन करने वाला (है), वह अनुपम प्रसन्नता में (रहता है), जो (मनुष्य) अनुपम प्रसन्नता में (रहता है), वह समतामयी (आत्मा) के दर्शन करने वाला (है)।

49. वह ऊँची, नीची (और) तिरछी दिशाओं में सब ओर से पूर्ण जागरूकता से चलने वाला (होता है)। (अतः) (वह) वीर (ऊर्ध्वगामी ऊर्जा वाला) हिंसा-स्थान के साथ (अप्रमादी होने के कारण) संलग्न नहीं किया जाता है।

50. जो भी (कर्म)-बंधन और (कर्म से) छुटकारे के विषय में खोज करने वाला (होता है), जो आघातरहितता (अहिंसा) को जानने वाला (होता है), वह मेधावी (शुद्ध बुद्धि) (होता है)।

कुशल (जागरूक) (व्यक्ति) न (कर्मों से) बंधा हुआ (है) और न (कर्मों से) मुक्त किया गया (है)। (आत्मानुभवी

कुसले पुण णो बद्धे णो मुक्के ।
से जं च आरभे, जं च णारभे, अणारद्धं च ण आरभे ।

51 सुत्ता अमुणी मुणिणो सया जागरंति ।

52 जस्सिमे सद्दा य रूवा य गंधा य रसा य फासा य अभिसम-ण्णागता भवंति से आतवं णाणवं वेयवं धम्मवं बंभवं ।

53 पासिय आतुरे पाणे अप्पमत्तो परिव्वए ।
मंता एयं मतिमं पास,
आरंभजं दुक्खमिणं ति णच्चा,
मायी पमायी पुणरेति गब्भं ।
उवेहमाणो सद्द—रूवेसु अंजू माराभिसंकी मरणा पमुच्चति ।

54 अप्पमत्तो कामेहिं, उवरतो पावकम्मेहिं, वीरे आतगुत्ते खेयण्णे ।

वंधन और मुक्ति के विकल्पों से परे होता है)।
वह (कुशल) जिस (काम) को भी करता है, (व्यक्ति व समाज उसको ही करे)। (वह) जिस (काम) को विल्कुल नहीं करता है, (व्यक्ति व समाज) (कुशलपूर्वक) नहीं किए हुए (काम) को विल्कुल न करे।

51. अज्ञानी (सदा) सोए हुए अध्यात्ममार्ग को भूले हुए) (हैं), ज्ञानी सदा जागते हैं (अध्यात्ममार्ग में स्थित)हैं।

52. जिसके द्वारा ये शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श (द्रष्टाभाव से) अच्छी तरह जाने गए होते हैं, वह आत्मवान्, ज्ञानवान्, वेदवान्, धर्मवान् (और) ब्रह्मवान् (होता है)।

53. पीड़ित प्राणियों को देखकर (तू) अप्रमादी (होकर) गमन कर। (यहाँ) (प्राणी) (पीड़ा में) चीखते हुए (दिखाई देते हैं)। हे बुद्धिमान्! इसको (तू) देख।

यह पीड़ा हिंसा से उत्पन्न होने वाली (है), (तथा) माया-युक्त और प्रमादी (व्यक्ति) गर्भ में वार-वार आता है, इस प्रकार जानकर (तू अप्रमादी बन)।

शब्द और रूप की उपेक्षा करता हुआ (मनुष्य) संयम में तत्पर (हो जाता है) (तथा) (वार-वार) मरण से डरने वाला मरण से छुटकारा पा जाता है।

54 (जो) इच्छाओं में मूर्च्छा रहित (होता है) (तथा) पाप-कर्मों से मुक्त (होता है), (वह) वीर (ऊर्ध्वगामी ऊर्जा वाला) (होता है), आत्म-रक्षित (तथा) (द्रष्टाभाव से) जानने वाला (होता है)।

जे पज्जवजातसत्थस्स खेतण्णे से असत्थस्स खेतण्णे। जे असत्थस्स खेतण्णे से पज्जवजातसत्थस्स खेतण्णे।

55 अकम्मस्स ववहारो ण विज्जति।
कम्मुणा उवाधि जायति

56 कम्मं च पडिलेहाए कम्ममूलं च जं छणं, पडिलेहिय सव्वं समायाय दोहिं अंतेहिं अदिस्समाणे।

57 अग्गं च मूलं च विगिंच धीरे, पलिछिंदियाणं णिक्कम्मदंसी।

58 लोगंसि परमदंसी विवित्तजीवी उवसंते समिते सहिते सदा जते कालकंखी परिव्वए।

59 सच्चंसि धितिं कुव्वह। एत्थोवरए मेहावी सव्वं पावं कम्मं झोसेति।

जो पर्यायों से उत्पन्न (दृष्टिरूपी) शस्त्र का जानने वाला (है) वह अशस्त्र (द्रव्य-दृष्टि) का जानने वाला है। जो अशस्त्र (द्रव्य-दृष्टि) का जानने वाला (है), वह पर्यायों से उत्पन्न (दृष्टिरूपी) शस्त्र का जानने वाला (है) [पर्याय-दृष्टि, द्रव्य-दृष्टि की नाशक होती है, इसलिए पर्याय-दृष्टि को शस्त्र कहा है]।

55 कर्मों से रहित (व्यक्ति) के लिए (कोई) सामान्य, लोक प्रचलित आचरण नहीं होता है। उपाधि (विभेदक गुण) कर्मों से उत्पन्न होती है/होता है।

56 (जो मनुष्य) कर्म को ही देखकर तथा जो हिंसा कर्म का आधार (है) (उसको) देखकर पूर्ण (संयम) को ग्रहण करके (रहता है), (वह) दोनों अंतों (राग-द्वेष, शुभ-अशुभ) के द्वारा नहीं कहा जाता हुआ (होता है) अर्थात् वह दोनों अंतों से परे हो जाता है।

57 हे धीर! (तू) (विषमता के) प्रतिफल और आधार का निर्णय कर। (तथा) (उसका) छेदन करके कर्मों से रहित (अवस्था) का अर्थात् समता का देखने वाला (बन)।

58 (जो) लोक में परम-तत्त्व को देखने वाला है, (वह) (वहाँ) विवेक-युक्त जीने वाला (होता है), तनाव-मुक्त (होता है), समतावान् (होता है), कल्याण करने वाला (होता है), सदा जितेन्द्रिय (होता है), (कार्यों के लिए) उचित समय को चाहने वाला (होता है), (तथा) (वह) (अनासक्ति-पूर्वक) (वहाँ) गमन करता है।

59 (तुम सब) सत्य में धारणा करो। यहां पर (सत्य में) ठहरा हुआ मेधावी (शुद्ध बुद्धि वाला) सब पाप-कर्मों को क्षीण कर देता है।

60 अणोगचित्ते खलु अयं पुरिसे, से केयणं अरिहइ पूरइत्तए ।

61 णिस्सारं पासिय णाणी ।

उववायं चयणं णच्चा अणण्णं चर माहणे ।
से ण छणे, न छणावए, छणंतं णाणुजाणति ।

62 कोधादिमाणं हणिया य वीरे, लोभस्स पासे णिरयं महंतं ।
तम्हा हि वीरे विरते वधातो, छिंदिज्ज सोतं लहुभूयगामी ।

63 गंथं परिण्णाय इहऽज्ज वीरे, सोयं परिण्णाय चरेज्ज दंते ।
उम्मुग्ग लद्धु इह माणवेहिं, णो पाणिणं पाणे समारभेज्जासि ।

64 समयं तत्थुवेहाए अप्पाणं विप्पसादए ।
अणण्णपरमं णाणी णो पमादे कयाइ वि ।

60 यह मनुष्य सचमुच अनेक चित्तों को (धारण करता है)। (आत्म-दृष्टि के उदय हुए बिना मनुष्य का शान्ति के लिए दावा करना ऐसे ही है जैसे कि) वह चलनी को (पानी से) भरने के लिए दावा करता है। [जैसे चलनी को पानी से भरा नहीं जा सकता है, उसी प्रकार चित्त-भूमि पर तनाव-मुक्ति सम्भव नहीं है]।

61 हे ज्ञानी ! (जीवन में) निस्सार (अवस्था) को देखकर (तू समझ)। हे अहिंसक ! (दु:ख पूर्ण) जन्म-मरण को जानकर समता का आचरण कर।

वह (समता का आचरण करने वाला) न हिंसा करता है, न हिंसा कराता है, (और) न हिंसा करते हुए का अनुमोदन करता है।

62 क्रोध आदि को (तथा) अहंकार को सर्वथा नष्ट करके वीर प्रचण्ड नरक (मय) लोभ को (द्रष्टाभाव से) देखता है, इस-लिए ही (कषायों का भार हटने के कारण) हलका होकर गमन करने वाला वीर हिंसा से मुक्त हुआ (संसार)-प्रवाह को नष्ट कर देता है।

63 परिग्रह को (द्रष्टाभाव से) जानकर (तथा) (संसार)-प्रवाह को (भी) (द्रष्टाभाव से) जानकर वीर यहाँ आज (ही) आत्म-नियन्त्रित (होकर) व्यवहार करे। (अत:) (तू) मनुष्य होने के कारण (संसार-सागर से) बाहर निकलने के (अवसर को) प्राप्त करके यहाँ प्राणियों के प्राणों की हिंसा मत कर।

64 वहाँ (जीवन में) समता को (मन में) धारण करके (व्यक्ति) स्वयं को प्रसन्न करे।

आतगुत्ते सदा वीरे जातामाताए जावए ।
विरागं रूवेहिं गच्छेज्जा महता खुड्डएहिं वा ।
आगतिं गतिं परिण्णाय दोहिं वि अंतेहिं अदिस्समाणेहिं से ण छिज्जति, ण भिज्जति, ण डज्झति, ण हम्मति कंचणं सव्वलोए ।

65 अवरेण पुव्वं ण सरंति एगे किमस्स तीतं किं वाऽऽगमिस्सं ।
भासंति एगे इह माणवा तु जमस्स तीतं तं आगमिस्सं ।
णातीतमट्ठं ण य आगमिस्सं अट्ठं णियच्छंति तथागता उ ।
विधूतकप्पे एताणुपस्सी णिज्झोसइत्ता ।

66 पुरिसा ! तुममेव तुमं मित्तं, किं बहिया मित्तमिच्छसि ?
जं जाणेज्जा उच्चालयितं तं जाणेज्जा दूरालयितं, जं जाणेज्जा दूरालइतं तं जाणेज्जा उच्चालयितं ।

अद्वितीय परम-(तत्व) के प्रति ज्ञानी कभी भी प्रमाद न करे। वीर सदा आत्मा से संयुक्त (रहे) (तथा) केवल (संयम)-यात्रा के लिए शरीर का प्रतिपालन करे।

(वह) बड़े और छोटे रूपों से विरक्ति करे।

(जो) (संसार में) आने और (संसार से) जाने को (द्रष्टा-भाव से) जानकर (लोक में विचरण करता है), (जो) दोनों ही अन्तों द्वारा समझा जाता हुआ (समझा जाने वाला) नहीं होने के कारण (द्वन्द्व से परे रहता है), वह लोक में कहीं भी (किसी के द्वारा) थोड़ा-सा (भी) न छेदा जाता है, न भेदा जाता है, न जलाया जाता है, तथा न मारा जाता है।

65 कुछ लोग भविष्य के (साथ-साथ) पूर्वगामी (अतीत) को मन में नहीं लाते हैं, इसका अतीत क्या (था)? और (इसका) भविष्य क्या (होगा)?

किन्तु, कुछ मनुष्य यहाँ कहते हैं (कि) इसका जो अतीत (था) वह (ही) (इसका) भविष्य (होगा)।

इसके विपरीत वीतराग न अतीत-प्रयोजन को तथा न भविष्य-प्रयोजन को देखते हैं।

अब (वर्तमान) को देखने वाला सम्यक्स्पृष्ट (समतामयी) आचरण के द्वारा कर्मों का नाश करने वाला (होता है)।

66 हे मनुष्य! तू ही तेरा मित्र (है), (तू) बाहर की ओर मित्र की तलाश क्यों करता है?

जिसे (तुम) ऊँचे (आध्यात्मिक मूल्यों) में जमा हुआ जानो, उसे (तुम) (आसक्ति से) दूरी पर जमा हुआ जानो, जिसे (तुम) (आसक्ति से) दूरी पर जमा हुआ जान लो, उसे (तुम) ऊँचे (आध्यात्मिक मूल्यों) में जमा हुआ जानो।

67 पुरिसा ! अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ, एवं दुक्खा पमोक्खसि।

68 पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि। सच्चस्स आणाए से उवट्ठिए मेधावी मारं तरति।

सहिते धम्ममादाय सेयं समणुपस्सति।

सहिते दुक्खमत्ताए पुट्ठो णो झंझाए।

69 जे एगं जाणति से सव्वं जाणति, जे सव्वं जाणति से एगं जाणति।

सव्वतो पमत्तस्स भयं, सव्वतो अप्पमत्तस्स णत्थि भयं। जे एगणामे से बहुणामे, जे बहुणामे से एगणामे।

दुक्खं लोगस्स जाणित्ता, वंता लोगस्स संजोगं, जंति वीरा महाजाणं।

परेण परं जंति, णावकंखंति जीवितं।

एगं विगिंचमाणे पुढो विगिंचइ, पुढो विगिंचमाणे एगं विगिंचइ सड्ढी आणाए मेधावी।

67 हे मनुष्य ! (तू) (अपने) मन को ही रोककर (जी)। इस प्रकार (तू) दुख से (ही) छूट जायगा।

68 हे मनुष्य ! (तू) सत्य का ही निर्णय कर। (जो) सत्य की आज्ञा में उपस्थित (है), वह मेधावी मृत्यु को जीत लेता है। सुन्दर चित्तवाला (संयम-युक्त) (व्यक्ति) धर्म (अध्यात्म) को ग्रहण करके श्रेष्ठतम को भलीभाँति देखता (अनुभव करता) है।

दु:ख की मात्रा से ग्रस्त (व्यक्ति) (जो) सुन्दर चित्तवाला (संयम-युक्त) (होता है) (वह) व्याकुलता में नहीं (फँसता है)।

69 जो अनुपम (आत्मा) को जानता है, वह सब (विषमताओं) को जानता है; जो सब (विषमताओं) को जानता है, वह अनुपम (आत्मा) को जानता है।

प्रमादी (विषमताधारी) के लिए सब ओर से भय (होता है), अप्रमादी (समताधारी) के लिए किसी ओर से भय नहीं (होता है)।

जो एक (मोह) को झुकाता है, वह बहुत (कषायों) को झुकाता है। जो बहुत (कषायों) को झुकाता है, वह एक (मोह) को झुका देता है।

प्राणी-समूह के दु:ख को जानकर (तू) (समता का आचरण कर), संसार के प्रति ममत्व को (मन से) बाहर निकाल कर वीर (समतारूपी) महापथ पर चलते हैं।

(वे) आगे से आगे चलते जाते हैं, (और) (आसक्ति-युक्त) जीवन को नहीं चाहते हैं।

केवल मात्र (हिंसा-दोष) को दूर हटाता हुआ (व्यक्ति) एक-

लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं ।
अत्थि सत्थं परेण परं, णत्थि असत्थं परेण परं ।

70 जे कोहदंसी से माणदंसी, जे माणदंसी से मायदंसी, जे मायदंसी से लोभदंसी, जे लोभदंसी से पेज्जदंसी, जे पेज्जदंसी से दोसदंसी, जे दोसदंसी से मोहदंसी, जे मोहदंसी ....से दुक्खदंसी ।

एक करके (दूसरे दोषों को) दूर हटा देता है। एक-एक करके (दूसरे दोषों को) दूर हटाता हुआ (व्यक्ति), केवल मात्र (हिंसा-दोष) को (ही) दूर हटा देता है। (अहिंसा-समता धर्म की) आज्ञा (सलाह) में श्रद्धा रखने वाला शुद्ध बुद्धि वाला (होता है)।
प्राणी-समूह को ही (समतादर्शी) की आज्ञा से जानकर (जो) (व्यक्ति अहिंसा का पालन करता है) (वह) निर्भय (हो जाता है)।
शस्त्र तेज से तेज होता है, अशस्त्र तेज से तेज नहीं होता है [हिंसा तीव्र से तीव्र होती है, अहिंसा सरल होती है]

70 जो (व्यक्ति) क्रोध को समझने वाला (होता है); वह (उसके) (मूल में स्थित) अहंकार को समझने वाला (हो जाता है); जो (व्यक्ति) अहंकार को समझने वाला (होता है), वह (उससे) (उत्पन्न) मायाचार को समझने वाला (हो जाता है);
जो (व्यक्ति) मायाचार को समझने वाला (होता है), वह (उसके) (मूल में स्थित) लोभ को समझने वाला (हो जाता है);
जो (व्यक्ति) लोभ को समझने वाला (होता है), वह (उसके) (मूल में स्थित) राग को समझने वाला (हो जाता है); जो (व्यक्ति) राग को समझने वाला (होता है), वह (उससे) (उत्पन्न) द्वेष को समझने वाला हो जाता है;
जो (व्यक्ति) (राग) (और) द्वेष को समझने वाला (होता है), वह (उसके) (मूल में स्थित) आसक्ति को समझने वाला (हो जाता है);
जो (व्यक्ति) आसक्ति को समझने वाला (होता है) वह

71 किमत्थि उवधी पासगस्स, ण विज्जति ? णत्थि त्ति बेमि ।

72 सव्वे पाणा सव्वे भूता सव्वे जीवा सव्वे सत्ता ण हंतव्वा, ण अज्जावेतव्वा, ण परिघेत्तव्वा, ण परितावेयव्वा, ण उद्दवेयव्वा ।
एस धम्मे सुद्धे णितिए सासए समेच्च लोयं खेतण्णेहिं पवेदिते ।

73 णो लोगस्सेसणं चरे ।

74 णाऽणागमो मच्चुमुहस्स अत्थि ।
इच्छापणीता वंकाणिकेया कालग्गहीता णिचये णिविट्ठा पुढो पुढो जाइं पकप्पेंति ।

75 उवेहेणं बहिता य लोकं। से सव्वलोकंसि जे केइ विण्णू-अणुविथि पास णिक्खित्तदंडा जे केई सत्ता पलियं चयंति णरा मुतच्चा धम्मविदु त्ति अंजू आरंभजं दुक्खमिणं ति णच्चा ।

(उससे) (उत्पन्न) (विभिन्न प्रकार के) दुःख को समझने वाला (हो जाता है)।

71 क्या द्रष्टा का (कोई) नाम है (या) नहीं है ? नहीं है, इस प्रकार मैं कहता हूं।

72 कोई भी प्राणी, कोई भी जन्तु, कोई भी जीव, कोई भी प्राणवान् मारा नहीं जाना चाहिए, शासित नहीं किया जाना चाहिए, गुलाम नहीं बनाया जाना चाहिए, सताया नहीं जाना चाहिए, (और) अशान्त नहीं किया जाना चाहिए। यह (अहिंसा) धर्म शुद्ध (है), नित्य (है), और शाश्वत (है), (यह धर्म) जीव-समूह को जानकर कुशल (व्यक्तियों) द्वारा कथित (है)।

73 (मूल्यों का साधक) लोक द्वारा (प्रशंसित होने के लिए) इच्छा न करें।

74 (व्यक्तियों के लिए) मृत्यु के मुख में न आना नहीं है (अर्थात् मृत्यु के मुख में आना अवश्यम्भावी है), (फिर भी) (वे) इच्छाओं द्वारा (ही) (कार्यों में) उपस्थित (होते हैं) वे (ऐसे हैं) (जिनके) (मनरूपी) घर कुटिल (होते हैं) (यद्यपि) वे मृत्यु द्वारा पकड़े हुए (हैं), फिर भी (वे) संग्रह में आसक्त (होते हैं)। (अतः) (वे) अलग-अलग (प्रकार के) जन्म को धारण करते हैं।

75 इस लोक में (जो) (व्यक्ति) (अहिंसा की परिधि से) बाहर (है), (उसके) (अज्ञान को) (तू) ठीक समझ। जो कोई (अहिंसा की परिधि में है), वह समस्त (मनुष्य) लोक में बुद्धिमान है। (तू) बड़ी सावधानी से समझ (कि) जो कोई (व्यक्ति) कर्म- (समूह) को दूर हटाते हैं, (वे) (ही) (ऐसे) प्राणी (मनुष्य) हैं (जिनके) (द्वारा) (विभिन्न प्रकार की)

एवमाहु सम्मत्तदंसिणो । ते सव्वे पावादिया दुक्खस्स कुसला परिण्णमुदाहरंति इति कम्मं परिण्णाय सव्वसो ।

76 इह आणाकंखी पंडिते अणिहे एगमप्पाणं सपेहाए धुणे सरीरं, कसेहि अप्पाणं, जरेहि अप्पाणं । जहा जुन्नाइं कट्ठाइं हव्ववाहो पमत्थति एवं अत्तसमाहिते अणिहे ।

77 विगिंच कोहं अविकंपमाणे इमं निरुद्धाउयं सपेहाए । दुक्खं च जाण अदुवाऽऽगमेस्सं । पुढो फासाइं च फासे । लोयं च पास विप्फंदमाणं ।
जे णिव्वुडा पावेहिं कम्मेहिं अणिदाणा ते वियाहिता । तम्हाऽतिविज्जो णो पडिसंजलेज्जासि त्ति बेमि ।

78 णेत्तेहिं पलिछिण्णेहिं आताणसोतगढिते बाले अव्वोच्छिण्ण-

हिंसा छोड़ दी गई है। (जिनकी) चित्तवृत्तियाँ समाप्त हुई (हैं), (ऐसे) (अनासक्त) मनुष्य अध्यात्म के जानकार (होते हैं) और (वे) सरल (अकुटिल) (होते हैं)। दुःख हिंसा से उत्पन्न (होता है), इस प्रकार इस (बात) को जानकर (मनुष्य अनासक्ति का अभ्यास करे)।

ऐसा समत्वदर्शियों ने कहा। इस प्रकार कर्म- (समूह) को सब प्रकार से जानकर वे सभी कुशल व्याख्याता दुःख के (कारणभूत) ज्ञान का कथन करते हैं।

76 हे (समतादर्शी की) आज्ञा (पालन) के इच्छुक, बुद्धिमान् (व्यक्ति)! (तू) यहाँ अनासक्त (हो जा), अनुपम आत्मा को (ही) देखकर (कर्म)-शरीर को दूर हटा, अपने को नियन्त्रित कर (और) आत्मा में घुल जा।

जैसे अग्नि जीर्ण (सूखी) लकड़ियों को नष्ट कर देती है, इसी प्रकार आत्मा में लीन, अनासक्त (व्यक्ति) (राग-द्वेष को नष्ट कर देता है)।

77 आयु सीमित (है); इस (बात) को समझकर (तू) निश्चल रहता हुआ क्रोध को छोड़। और (आसक्ति से) आगामी अथवा (वर्तमान) दुःख को (तू) जान। तथा (आसक्त) (मनुष्य) विभिन्न दुःखों को प्राप्त करता है। और (दुःखों से) तड़फते हुए लोक को (तू) देख।

जो पाप कर्मों से मुक्त (है),वे निदानरहित(स्वार्थपूर्ण प्रयोजन-रहित) कहे गये (हैं)। इसलिए महान् ज्ञानी (अनासक्त होते हैं)। (तू) (उनका अनुसरण कर) (और) (इन्द्रियों को) उत्ते-जित मत कर, इस प्रकार मैं कहता हूं।

78 (जो) परिसीमित (संयमित) नेत्रों (इन्द्रियों) के होने पर (भी) इन्द्रियों के प्रवाह में आसक्त (हो जाता है), (वह)

बंधणे अरणभिक्कंतसंजोए ।
तमंसि अविजाणओ आणाए लंभो णत्थि त्ति बेमि ।

79 जस्स णत्थि पुरे पच्छा मज्झे तस्स कुओ सिया ?
से हु पन्नाणमंते बुद्धे आरंभोवरए ।
सम्ममेतं ति पासहा ।
जेण बंधं वहं घोरं परितावं च दारुणं ।
पलिछिंदिय बाहिरगं च सोतं णिक्कम्मदंसी इह मच्चिएहिं ।
कम्मुणा सफलं दट्ठुं ततो णिज्जाति वेदवी ।

80 जे खलु भो वीरा समिता सहिता सदा जता संथडदंसिणो

अज्ञानी (होता है)। (इसके फलस्वरूप) (उसके) कर्म-बन्धन बिना टूटे हुए (रहते हैं) (और) (उसके) (विभाव) संयोग बिना नष्ट हुए (रहते हैं)।

(इन्द्रिय विषयों में रमने की आदत के वशीभूत होकर) (धीरे-धीरे) (वह) अन्धकार (इन्द्रिय आसक्ति) के प्रति अनजान (होता जाता है)। (ऐसे व्यक्ति के लिए) (समता-दर्शी के) उपदेश का (कोई) लाभ नहीं (होता है)। इस प्रकार मैं कहता हूं।

79 जिसके पूर्व में (स्थित) (आसक्तियाँ) (तथा) (उनके कारण) बाद में (होने वाली इच्छाएँ) विद्यमान नहीं हैं (समाप्त हो चुकी हैं), उसके मध्य में (आसक्तियाँ) कहाँ से होंगी ? वह (ऐसा व्यक्ति) ही प्रज्ञावान, बुद्ध और हिंसा से विरत (होता है)।

इस प्रकार तुम (सब) समझो (कि) यह सत्य (है)। जिस (आसक्ति) के कारण (व्यक्ति) कर्म-बन्धन को (ग्रहण करता है), हत्या और निर्दयता में (रत रहता है) और घोर दुःख (पाता है), (उस) (आसक्ति के कारण) बाहर की ओर (जाने वाली) ज्ञानेन्द्रिय समूह को ही (विषयों से) हटाकर (व्यक्ति) (चले)। और (वास्तव में) यहाँ मनुष्यों में से (अपने में ही) निष्कर्म (कर्मरहित अवस्था) को अनुभव करने वाला (ज्ञानी होता है)।

(सदैव) कर्म के साथ (रहने वाले) (सुख-दुःखात्मक) फल को देखकर समझदार (व्यक्ति) (शिक्षा ग्रहण करता है) (और) इसलिए (वह) (अपने को) (आसक्ति से) दूर ले जाता है।

80 अरे ! जो निश्चय ही वीर (थे), रागादिरहित (थे), हित-कारी (थे), जितेन्द्रिय (थे), गहरी अनुभूति वाले (थे), शरीर

आतोवरता अहा तहा लोगं उवेहमाणा पाईणं पडीणं दाहिणं उदीणं इति सच्चंसि परिविचिट्ठिंसु ।

81 गुरू से कामा । ततो से मारस्स अंतो । जतो से मारस्स अंतो ततो से दूरे ।

82 णेव से अंतो णेव से दूरे ।
से पासति फुसितमिव कुसग्गे पणुण्णं णिवतितं वातेरितं ।
एवं बालस्स जीवितं मंदस्स अविजाणतो ।

83 संसयं परिजाणतो संसारे परिण्णाते भवति, संसयं अपरिजाणतो संसारे अपरिण्णाते भवति ।

84 उट्ठिते णो पमादए ।

85 से पुव्वं पेतं पच्छा पेतं भेउरधम्मं विद्धंसणधम्मं अधुवं अणितियं असासतं चयोवचइयं विप्परिणामधम्मं । पासह एयं रूवसंधिं ।

86 आवंती केआवंती लोगंसि परिग्गहावंती, से अप्पं वा बहुं वा

से विरत (थे), उचित प्रकार से लोक को जानते हुए (स्थित थे), अतः वे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण (दिशा) में सत्य में स्थित हुए।

81 उसकी (मूर्च्छित की) इच्छाएं तीव्र (होती हैं)। इसलिए वह अनिष्ट/अहित के समीप (होता है)। चूंकि वह अनिष्ट/अहित के समीप (होता है), इसलिए वह (समता/शांति से) दूर (होता है)।

82 वह (अनासक्त मनुष्य) (अहित के) समीप नहीं (होता है), (इसलिए) वह (शान्ति/समता से) दूर नहीं (रहता है)।
वह (जीवन को) कुश के नोक पर वायु द्वारा हिलते हुए, नीचे गिरते हुए (तथा) मिटाए हुए (जल) बिन्दु की तरह देखता है। अज्ञानी और मूर्ख के द्वारा जीवन इस प्रकार (नहीं देखा जाता है); (उसके द्वारा) (ऐसा) नहीं जानने से (वह) (सदैव) (मूर्च्छित बना रहता है)।

83 (संसार के विषय में) संशय को समझने से संसार जाना हुआ (होता है), (संसार के विषय में) संशय को नहीं समझने से संसार जाना हुआ नहीं होता।

84 (जो) प्रमाद (विषमता) नहीं करता है, (वह) (समता में) प्रगति किया हुआ (होता है)।

85 (तुम) इस देह-संगम को देखो। (यह) (किसी के) पहले छूटा (या) (किसी के) बाद में छूटा (किन्तु यह छूटता अवश्य है)। (इसका) (तो) नश्वर स्वभाव (है), (इसका) (तो) स्वभाव विनाश (मय) (है), यह अध्रुव (है), अनित्य (है), अशाश्वत (है), बढ़ने (वाला) और क्षय वाला है, (तथा) परिणमन (इसका) स्वभाव (है)।

86 इस लोक में जितने (भी) (मनुष्य) परिग्रह-युक्त (हैं), (वे)

अणुं वा थूलं वा चित्तमंतं वा अचित्तमंतं. वा, एतेसु चेव परिग्गहावंती ।
एतदेवेगेसिं महब्भयं भवति ।
लोगवित्तं च णं उवेहाए ।
एते संगे अविजाणतो ।

87 से सुतं च मे अज्झत्थं च मे—बंधपमोक्खो तुज्झऽज्झत्थेव ।

88 समियाए धम्मे आरिएहिं पवेदिते ।

89 इमेण चेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झतो ? जुद्धारिहं खलु दुल्लभं ।

90 जं सम्मं ति पासहा तं मोणं ति पासहा, जं मोणं ति पासहा तं सम्मं ति पासहा ।

91 उण्णतमाणे य णरे महता मोहेण मुज्झति ।

92 वितिगिंछसमावन्नेणं अप्पाणेणं णो लभति समाधिं ।

(आसक्ति के कारण) (परिग्रही कहे जाते हैं)। वह (मनुष्य-समूह) (जो) थोड़ी या बहुत, छोटी या बड़ी, सजीव या निर्जीव (वस्तु) को (ममता से) (रखता है); इनमें ही ममत्व-युक्त (कहा जाता है)। इसलिए ही (उन) कई (मनुष्यों) में महाभय उत्पन्न होता है। (इस बात को) (व्यक्ति) लोक-आचरण को देखकर ही (समझे)। इन आसक्तियों को नहीं समझने से (व्यक्ति) (भयभीत रहता है)।

87 मेरे द्वारा (यह) सुना गया (है) और मेरे द्वारा आत्म-संबंधी (यह ज्ञान प्राप्त किया गया है) कि बंध (अशान्ति) और मोक्ष (शान्ति) तेरे (अपने) मन में ही (होता है)/ (होती है)।

88 तीर्थङ्करों द्वारा समता में धर्म कहा गया (है)।

89 इस (मानसिक विषमता) के साथ ही युद्ध कर, तुम्हारे लिए बाहर (व्यक्तियों) से युद्ध करने से क्या लाभ? (विषमता के साथ) युद्ध करने के योग्य (होना) निश्चय ही दुर्लभ (है)।

90 इस प्रकार (तुम) (सब) जानो (कि) जो (मानसिक) समता (है) अर्थात् द्वन्द्वातीत अवस्था है, वह मौन में (ही) (प्रकट होती है)। अतः (तुम) (सब) (इस बात को) समझो। इस प्रकार (तुम) (सब) जानो (कि) जो मौन में (स्थित है), वह (मानसिक) समता में (स्थित है) अर्थात् द्वन्द्वातीत अवस्था में स्थित है। अतः (तुम) (सब) (इस बात को) समझो।

91 उत्थान का अहंकार होने पर ही मनुष्य तीव्र मोह (आसक्ति) के कारण मूढ़ बन जाता है।

92 (अपने) मन में (अध्यात्म के प्रति) ग्रहण किए हुए संदेह के कारण (मनुष्य) समाधि (अवस्था) को प्राप्त नहीं कर पाता है।

93 से उट्ठितस्स ठितस्स गतिं समणुपासह ।
एत्थ वि बालभावे अप्पाणं णो उवदंसेज्जा ।

94 तुमं सि णाम तं चेव जं हंतव्वं ति मण्णसि,
तुमं सि णाम तं चेव जं अज्जावेतव्वं ति मण्णसि,
तुमं सि णाम तं चेव जं परितावेतव्वं ति मण्णसि,
तुमं सि णाम तं चेव जं परिघेतव्वं ति मण्णसि,
एवं तं चेव जं उद्दवेतव्वं ति मण्णसि ।
अंजू चेयं पडिबुद्धजीवी । तम्हा ण हंता, ण वि घातए ।
अणुसंवेयणमप्पाणेणं, जं हंतव्वं णाभिपत्थए ।

95 जे आता से विण्णाता, जे विण्णाता से आता । जेण विजाणति से आता । तं पडुच्च पडिसंखाए । एस आतावादी समियाए परियाए वियाहिते त्ति बेमि ।

93 (अध्यात्म में) प्रगति किए हुए (और) दृढ़ता-पूर्वक (उसमें) लगे हुए (व्यक्ति) की अवस्था को (तुम) देखो। (और) (इसलिए) यहां अपने को मोहित (मूर्च्छित) अवस्था में बिल्कुल मत दिखलाओ।

94 देख! निस्सन्देह तू वह ही है जिसको (तू) मारे जाने योग्य मानता है।

देख! निस्सन्देह तू वह ही है जिसको (तू) शासित किए जाने योग्य मानता है।

देख! निस्सन्देह तू वह ही है जिसको (तू) सताए जाने योग्य मानता है।

देख! निस्सन्देह तू वह ही है जिसको (तू) गुलाम बनाए जाने योग्य मानता है।

इसी प्रकार (देख!) (निस्सन्देह) (तू) वह ही (है) जिसको (तू) अशान्त किए जाने योग्य मानता है।

जागरूक (होकर) ही जीने वाला (व्यक्ति) सरल (होता है)। इसलिए (वह) (स्वयं) न हिंसा करने वाला (होता है) और न ही (वह) दूसरों से हिंसा करवाता है। अपने द्वारा (किए हुए कर्मों को) (अपने को) भोगना (पड़ता है), (इसलिए) जिसको (तू) (किसी भी कारण से) मारे जाने योग्य (मानता है), (उसकी) (तू) इच्छा मत कर।

95 जो आत्मा (है), वह जानने वाला (है), जो जानने वाला (है) वह आत्मा (है)। जिससे (मनुष्य) जानता है, वह आत्मा (है)। उसको आधार बनाकर (ही) (प्रत्येक व्यक्ति) (आत्मा शब्द का) व्यवहार करता है। यह आत्मवादी समता का रूपान्तरण कहा गया (है)। इस प्रकार (मैं) कहता हूँ।

96 अणाणाए एगे सोवट्ठाणा, आणाए एगे णिरुवट्ठाणा। एतं ते मा होतु।

97 सव्वे सरा नियट्ट'ति,
तक्का जत्थ ण विज्जति,
मती तत्थ ण गाहिया।
ओए अप्पतिट्ठाणस्स खेत्तण्णे।
से ण दीहे, ण हस्से, ण वट्टे, ण तंसे, ण चउरंसे,
ण परिमंडले, ण किण्हे, ण णीले, ण लोहिते, ण हालिद्दे,
ण सुक्किले, ण सुरभिगंधे, ण दुरभिगंधे, ण तित्ते,
ण कडुए, ण कसाए, ण अंबिले, ण महुरे, ण कक्खडे,
ण मउए, ण गरुए, ण लहुए, ण सीए, ण उण्हे,
ण णिद्धे, ण लुक्खे, ण काऊ, ण रुहे, ण संगे, ण इत्थी,
ण पुरिसे, ण अण्णहा।
परिण्णे, सण्णे।
उवमा ण विज्जति।
अरूवी सत्ता।

96 (आश्चर्य !) कुछ लोग (समतादर्शी की) अनाज्ञा में (भी) तत्परता सहित (होते हैं), कुछ लोग (समतादर्शी की) आज्ञा में (भी) आलसी (होते हैं)। यह तुम्हारे लिए न होवे।

97 (आत्मानुभव की सर्वोच्च अवस्था का वर्णन करने में) सब शब्द लौट आते हैं (तथा) जिसके (आत्मानुभव के) विषय में (कोई) तर्क (कार्यकारी) नहीं होता है। बुद्धि उसके विषय में (कुछ भी) पकड़ने वाली नहीं (होती है)।

(वह) (अवस्था) आभा-(मयी) (होती है), (वह) किसी ठिकाने पर नहीं (होती है), (वह) (केवल) ज्ञाता-द्रष्टा (अवस्था) (होती है)।

(वह) (अवस्था) न बड़ी (है), न छोटी (है), न गोल (है), न त्रिकोण (है) न चतुष्कोण (है) और न परिमण्डल (है)। (वह) न काली (है), न नीली (है), न लाल (है), न पीली (है), (और) न सफेद (है)।

(वह) न सुगन्धमयी (है) (और) न दुर्गन्धमयी (है)।

(वह) न तीखी (है), न कड़ुवी (है), न कषैली (है), न खट्टी (है), (और) न मीठी (है)।

(वह) न कठोर (है), न कोमल (है), न भारी (है), न हलकी (है), न ठण्डी (है), न गर्म (है), न चिकनी (है) (और) न रूखी (है)।

(वह) न लेश्यावान् (है), (वह) न उत्पन्न होने वाली (है), (उसके) (वहां) (कोई) आसक्ति नहीं (है)।

(वह) न स्त्री (है), न पुरुष और न इसके विपरीत (न नपुंसक)।

(वह) (शुद्ध आत्मा) ज्ञाता (है), अमूर्च्छित (होश में आया हुआ) (है)।

अपदस्स पदं णत्थि ।
से ण सद्दे, ण रूवे, ण गंधे, ण रसे, ण फासे, इच्चेतावंति त्ति बेमि ।

98 संति पाणा अंधा तमंसि वियाहिता ।
पाणा पाणे किलेसंति ।
बहुदुक्खा हु जंतवो ।
सत्ता कामेहिं माणवा । अबलेण वहं गच्छंति सरीरेण पभंगुरेण ।

99 आणाए मामगं धम्मं ।

100 जहा से दीवे असंदीणे एवं से धम्मे आरियपदेसिए ।

(उसके लिए) (कोई) तुलना नहीं है। (वह) एक अमूर्तिक सत्ता (है)। (उस) पदातीत के लिए (कोई) नाम नहीं (है)।
(वह) (शुद्ध आत्मा) न शब्द (है), न रूप (है), न गंध (है), न रस (है), न स्पर्श (है)।
बस इतने ही (वर्णनों) को (तुम) (जानलो) (काफी है)। इस प्रकार (मैं) कहता हूँ।

98 (जो) प्राणी (मूर्च्छारूपी) अंधकार में रहते हैं (वे) अन्ध (ज्ञान रहित) कहे गये (हैं)। प्राणी प्राणियों को दुःख देते हैं। निस्सन्देह प्राणी बहुत दुःखी (हैं)। मनुष्य इच्छाओं में आसक्त (होते हैं)। (इसलिए) निर्बल और अत्यन्त नाशवान् शरीर के होने पर (भी) (मनुष्य) (इच्छाओं की पूर्ति के लिए) (प्राणियों की) हिंसा करते हैं।

99 (आध्यात्मिक रहस्यों में प्रगति के लिए) (समतादर्शी की) आज्ञा में (चलना) मेरा कर्त्तव्य (है)।

या

मेरे धर्म को (जानकर) (ही) (तुम) (मेरी) आज्ञा को (मानो)।

या

मेरा (समतादर्शी का) धर्म (समतादर्शी की) (मेरी) आज्ञा में (ही निहित है)।

100 जैसे असंदीन (पानी में न डूबा हुआ) द्वीप (कष्ट में फंसे हुए समुद्र-यात्रियों के लिए) (आश्रय) (होता है), इसी प्रकार समतादर्शी के द्वारा प्रतिपादित धर्म (दुःख में फंसे हुए प्राणियों के लिए आश्रय होता है)।

101 दयं लोगस्स जाणित्ता पाईणं पडीणं दाहिणं उदीणं आइक्खे-
विभए किट्टे वेदवी ।

102 गामे अदुवा रण्णे, णेव गामे णेव रण्णे, धम्ममायाणह पवेदितं
माहणेण मतिमया ।

103 अहासुतं वदिस्सामि जहा से समणे भगवं उट्ठाय ।
संखाए तंसि हेमंते अहुणा पव्वइए रीइत्था ।।

104 अदु पोरिसिं तिरियभित्तिं चक्खुमासज्ज अंतसो झाति ।
अह चक्खुभीतसहिया ते हंता हंता बहवे कंदिसु ।।

105 जे केयिमे अगारत्था मीसीभावं पहाय से झाति ।
पुट्ठो वि णाभिभासिसु गच्छति णाइवत्तती अंजू ।।

101 जीव-समूह की दया को समझकर ज्ञानी पूर्व, पश्चिम, उत्तर, और दक्षिण दिशा में (सब स्थानों पर) (उसका) उपदेश दे, (उसको) वितरित करे (तथा) (उसकी) प्रशंसा करे ।

102 (धर्म) गांव में (होता है) अथवा जंगल में ? (वह) न ही गांव में (होता है), न ही जंगल में । (धर्म तो अहिंसा और समता के पालन में है) आत्मजागृति है और प्रज्ञावान् अहिंसक (महावीर) के द्वारा (इस) प्रतिपादित धर्म को (तुम) समझो ।

103 जैसा कि सुना है (मैं) कहूँगा । (आत्म-स्वरूप) को जानकर श्रमण भगवान् उस हेमन्त (ऋतु) में (सांसारिक परतन्त्रता को) त्यागकर दीक्षित हुए (और) वे इस समय (ही) विहार कर गए ।

104 अब (महावीर) तिरछी भीत पर प्रहर (तीन घण्टे की अवधि) तक (पलक न झपकाई हुई) आंखों को लगाकर आन्तरिक रूप से ध्यान करते थे । तब (उन असाधारण) आंखों के डर से युक्त वे (वे-समझ लोग) यहाँ आओ ! देखो ! (कहकर) बहुत लोगों को पुकारते थे ।

105 (यदि) कभी ये (महावीर) घर में रहने वाले से (युक्त) (स्थान) (पर ठहरते थे), (तो) वे (वहां उनसे) मेल-जोल के विचार को छोड़कर ध्यान करते थे । (यदि) (उनसे कभी कोई बात) पूछी गई (होती थी) (तो) भी (वे) बोलते नहीं थे, (कोई बाधा उपस्थित होने पर) (वे) (वहां से) चले जाते थे, (वे) (सदैव) संयम में तत्पर (होते थे) (और) (वे) (कभी) (ध्यान की) उपेक्षा नहीं करते थे ।

106 फरिसाइं दुत्तितिक्खाइं अतिअच्च मुणी परक्कममाणे
आघात-णट्ट-गीताइं दंडजुद्धाइं मुट्ठिजुद्धाइं ।।

107 गढिए मिहुकहासु समयम्मि णातसुते विसोगे अदक्खु
एताइं से उरालाइं गच्छति णायपुत्ते असरणाए ।

108 पुढविं च आउकायं च तेउकायं च वायुकायं च ।
पणगाइं बीयहरियाइं तसकायं च सव्वसो णच्चा ।।

109 एताइं संति पडिलेहे चित्तमंताइं से अभिण्णाय ।
परिवज्जियाण विहरित्था इति संखाए से महावीरे ।।

110 मातण्णे असणपाणस्स णाणुगिद्धे रसेसु अपडिण्णे ।
अच्छि पि णो पमज्जिया णो वि य कंडुयए मुणी गातं ।।

111 अप्पं तिरियं पेहाए अप्पं पिट्ठओ उप्पेहाए ।
अप्पं बुइए पडिभाणी पथपेही चरे जतमाणे ।।

106 दुस्सह कटु वचनों की अवहेलना करके मुनि (महावीर) (आत्म-ध्यान में) (ही) पुरुषार्थ करते हुए (रहते थे)। (वे) कथा-नाच-गान में (तथा) लाठी-युद्ध (और) मूठी-युद्ध में (समय नहीं विताते थे)।

107 परस्पर (काम) कथाओं में तथा (कामातुर) इशारों में आसक्त (व्यक्तियों) को ज्ञात-पुत्र (महावीर) (हर्ष)-शोक रहित देखते थे। वे ज्ञात-पुत्र इन मनोहर (बातों) का स्मरण नहीं करते थे।

108 पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, शैवाल, बीज और हरी वनस्पति तथा त्रसकाय को पूर्णतया जानकर (महावीर विहार करते थे)।

109 ये चेतनवान् है, उन्होंने देखा। इस प्रकार वे महावीर जानकर (और) समझकर (प्राणियों की हिंसा का) परित्याग करके विहार करते थे।

110 मुनि (महावीर) खाने-पीने की मात्रा को समझने वाले (थे), (भोजन के) रसों में लालायित नहीं होते (थे)। (वे) (भोजन-संबंधी) निश्चय नहीं (करते थे)। (आँख में कुछ गिरने पर) (वे) आँख को भी नहीं पोंछकर (रहते थे) अर्थात् नहीं पोंछते थे और (वे) शरीर को भी खुजलाते नहीं (थे)।

111 मार्ग को देखने वाले (महावीर) तिरछे (दाएँ-बाएँ) देखकर नहीं (चलते थे), पीछे की ओर देखकर नहीं (चलते थे), (किसी के द्वारा) संबोधित किए गए होने पर (वे) उत्तर देने वाले नहीं (होते थे)। (इस तरह से) (वे) सावधानी बरतते हुए गमन करते थे।

112 आवेसण-सभा-पवासु पणियसालासु एगदा वासो ।
अदुवा पलियट्ठाणेसु पलालपुंजेसु एगदा वासो ॥

113 आगंतारे आरामागारे नगरे वि एगदा वासो ।
सुसाणे सुण्णगारे वा रुक्खमूले वि एगदा वासो ॥

114 एतेहिं मुणी सयणेहिं समणे आसि पतेलस वासे ।
राइंदिवं पि जयमाणे अप्पमत्ते समाहिते झाती ॥

115 णिद्दं पि णो पगामाए सेवइया भगवं उट्ठाए ।
जग्गावतीय अप्पाणं ईसिं साईय अपडिण्णे ॥

116 संबुज्झमाणे पुणरवि आसिंसु भगवं उट्ठाए ।
णिक्खम्म एगया राओ बहिं चक्कमिया मुहुत्तागं ॥

117 सयणेहिं तस्सुवसग्गा भीमा आसी अणेगरूवा य ।

112 (महावीर का) कभी शून्य घरों में; सभा भवनों में, प्याउओं में, दुकानों में रहना (होता था)। अथवा (उनका) कभी (लुहार, सुनार, कुम्हार आदि के), कर्म-स्थानों में (और) घास-समूह में (छान के नीचे) ठहरना (होता था)।

113 (महावीर का) कभी मुसाफिरखाने में, (कभी) बगीचे में (बने हुए) स्थान में (तथा) (कभी) नगर में भी रहना होता था। तथा (उनका) कभी मसाण में, (कभी) सूने घर में (और) (कभी) पेड़ के नीचे के भाग में भी रहना (होता था)।

114 इन (उपर्युक्त) स्थानों में मुनि (महावीर) (चल रहे) तेरहवें वर्ष में (साढ़े बारह वर्ष-पन्द्रह दिनों में) समता-युक्त मन वाले रहे। (वे) रात-दिन ही (संयम में) सावधानी बरतते हुए अप्रमाद-युक्त (और) एकाग्र (अवस्था) में ध्यान करते थे।

115 भगवान् (महावीर) आनन्द के लिए कभी भी नींद का उपयोग नहीं करते थे। और (नींद आती तो) ठीक उसी समय अपने को खड़ा करके जगा लेते थे। (वे) (वास्तव में) (नींद की) इच्छारहित (होकर) बिल्कुल-थोड़ा सा सोने वाले (थे)।

116 कभी-कभी रात में (जब नींद सताती तो) भगवान् (महावीर) (आवास से) बाहर निकलकर कुछ समय तक बाहर इधर-उधर घूमकर फिर सक्रिय होकर पूर्णतः जागते हुए (ध्यान में) बैठ जाते थे।

117 उनके लिए (महावीर के लिए) (उन) स्थानों में नाना प्रकार के भयानक कष्ट भी वर्तमान थे। (वहाँ) जो भी

संसप्पगा य जे पाणा अदुवा पक्खिणो उवचरंति ।।

118 इहलोइयाइं परलोइयाइं भीमाइं अणेगरूवाइं ।
अवि सुब्भिदुब्भिगंधाइं सद्दाइं अणेगरूवाइं ।।

119 अधियासए सया समिते फासाइं विरूवरूवाइं ।
अरतिं रतिं अभिभूय रीयति माहणे अबहुवादी ।।

120 लाढेहिं तस्सुवसग्गा बहवे जाणवया लूसिसु ।
अह लूहदेसिए भत्ते कुक्कुरा तत्थ हिंसिसु णिवतिसु ।

121 अप्पे जणे णिवारेति लूसणए सुणए डसमाणे ।
छुच्छुक्कारेंति आहंतु समणं कुक्कुरा, दसंतु त्ति ।।
[छुच्छुकरेंति आहंसु समणं कुक्कुरा दसंतु त्ति][1] ।।

122 हतपुव्वो तत्थ डंडेण अदुवा मुट्ठिणा अदु फलेणं ।
अदु लेलुणा कवालेणं हंता हंता बहवे कंदिसु ।।

---

1. आयारंग-सुत्तं (श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई) पृष्ठ 413 col. 2 पृ. 97

चलने फिरने वाले जीव (थे) और (वहाँ) (जो) (भी) पंख-युक्त (जीव थे) (वे) (वहाँ) (उन पर) उपद्रव करते थे।

118 (महावीर ने) इस लोक संबंधी और परलोक संबंधी (अलौकिक) नाना प्रकार के भयानक (कष्टों) को (समतापूर्वक सहन किया)। (वे) अनेक प्रकार के रुचिकर और अरुचिकर गंधों में तथा शब्दों में (राग-द्वेष-रहित रहे)।

119 अहिंसक (और) बहुत न बोलने वाले (महावीर) ने अनेक प्रकार के कष्टों को शान्ति से झेला (और) (उनमें) (वे) सदा समतायुक्त (रहे)। (विभिन्न परिस्थितियों में) हर्ष (और) शोक पर विजय प्राप्त करके (वे) गमन करते रहे।

120 लाढ़ देश में रहने वाले लोगों ने उनके (महावीर के) लिए बहुत कष्ट (पैदा किए) (और) (उनको) हैरान किया। (लाढ़ देश के) निवासी रूखे (थे), उसी तरह (उनके द्वारा) पकाया हुआ भोजन (भी रूखा होता था)। कुत्ते (कूकरे) वहाँ पर (महावीर को) संताप देते थे (और) उन पर टूट पड़ते थे।

121 (वहाँ पर) कुछ ही लोग (ऐसे थे) (जो) काटते हुए कुत्तों को (और) हैरान करने वाले (मनुष्यों) को दूर हटाते थे। (किन्तु बहुत लोग) छु-छु की आवाज करते थे (और) कुत्तों को बुला लेते थे, (फिर उनको) महावीर के (पीछे) (लगा देते थे), जिससे (वे) थक जाएँ (और वहाँ से चले जाएँ)।

122 (कुछ लोगों द्वारा) वहाँ (महावीर पर) लाठी से अथवा मुक्के से अथवा चाकू, तलवार, भाला आदि से अथवा ईंट, पत्थर आदि के टुकड़े से, (अथवा) ठीकरे से पहले प्रहार किया गया (होता था) (बाद में) (वे ही कुछ लोग) आओ! देखो! (कहकर) बहुतों को पुकारते थे।

123 सूरो संगामसीसे वा संवुडे तत्थ से महावीरे।
पडिसेवमाणो फरूसाइं अचले भगवं रीयित्था ।।

124 अवि साहिए दुवे मासे छप्पि मासे अदुवा अपिवित्था।
राओवरातं अपडिण्णे अण्णगिलायमेगता भुंजे ।।

125 छट्ठेण एगया भुंजे अदुवा अट्ठमेण दसमेण।
दुवालसमेण एगदा भुंजे पेहमाणे समाहिं अपडिण्णे ।।

126 णच्चाण से महावीरे णो वि य पावगं सयमकासी।
अण्णेहिं वि ण कारित्था कीरंतं पि णाणुजाणित्था ।।

127 गामं पविस्स णगरं वा घासमेसे कडं परट्ठाए।
सुविसुद्धमेसिया भगवं आयतजोगताए सेवित्था ।।

128 अकसायी विगतगेही य सद्द-रूवेसऽमुच्छिते झाती।

123 जैसे (कवच से) ढका हुआ योद्धा संग्राम के मोर्चे पर (रहता है), (वैसे ही) वे महावीर वहाँ (लाढ़ देश में) कठोर (यातनाओं) को सहते हुए (आत्म-नियन्त्रित रहे) (और) (वे) भगवान् (महावीर) अस्थिरता-रहित (बिना डिगे) विहार करते थे।

124 और दो मास से अधिक अथवा छः मास तक भी (वे) (कुछ) नहीं पीते थे। रात में और दिन में (वे) सदैव राग-द्वेष-रहित (समतायुक्त) (रहे)। कभी-कभी (उन्होंने) बासी (तन्द्रालु) भोजन (भी) खाया।

125 कभी (वे) दो दिन के उपवास के बाद में, तीन दिन के उपवास के बाद में, अथवा चार दिन के उपवास के बाद में भोजन करते थे। कभी (वे) पाँच दिन के उपवास के बाद में भोजन करते थे। (वे) समाधि को देखते हुए निष्काम (थे)।

126 वे महावीर (आत्म-स्वरूप को) जानकर स्वयं भी बिल्कुल पाप नहीं करते थे (तथा) दूसरों से भी पाप नहीं करवाते थे (और) किए जाते हुए (पाप का) अनुमोदन भी नहीं करते थे।

127 गाँव या नगर में प्रवेश करके भगवान् (महावीर) (वहाँ) दूसरों के लिए (गृहस्थ के लिए) बने हुए आहार की (ही) भिक्षा ग्रहण करते थे। (इस तरह) सुविशुद्ध आहार की भिक्षा ग्रहण करके (वे) संयत (समतायुक्त) योगत्व से (उसको) उपयोग में लाते थे।

128 (महावीर) कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ)-रहित (थे), (उनके द्वारा) लोलुपता नष्ट करदी गई (थी), (वे)

छउमत्थे वि विप्परक्कममाणे ण पमायं सइं पि कुव्वित्था ।

129 सयमेव अभिसमागम्म आयतजोगमायसोहीए ।
अभिणिव्वुडे अमाइल्ले आवकहं भगवं समितासी ।।

□□

शब्दों (तथा) रूपों में अनासक्त (थे) और ध्यान करते थे। (जब वे) असर्वज्ञ (थे), (तब) भी (उन्होंने) साहस के साथ (संयम पालन) करते हुए एक बार भी प्रमाद नहीं किया।

129 आत्म-शुद्धि के द्वारा संयत प्रवृत्ति को स्वयं ही प्राप्त करके भगवान् शान्त (और) सरल (बने)। (वे) जीवन-पर्यन्त समतायुक्त रहे।

□□

संकेत-सूची

(अ) = अव्यय (इसका अर्थ = लगाकर लिखा गया है)

अक = अकर्मक क्रिया

अनि = अनियमित

आज्ञा = आज्ञा

कर्म = कर्मवाच्य

(क्रिविअ) = क्रिया विशेषण अव्यय (इसका अर्थ = लगाकर लिखा गया है)

तुवि = तुलनात्मक विशेषण

पु = पुल्लिंग

प्रे = प्रेरणार्थक क्रिया

भक = भविष्य कृदन्त

भवि = भविष्यत्काल

भाव = भाववाच्य

भू = भूतकाल

भूकृ = भूतकालिक कृदन्त

व = वर्तमानकाल

वकृ = वर्तमान कृदन्त

वि = विशेषण

विधि = विधि

विधिकृ = विधि कृदन्त

स = सर्वनाम

संकृ = सम्बन्ध भूत कृदन्त

सक = सकर्मक क्रिया

सवि = सर्वनाम विशेषण

स्त्री = स्त्रीलिंग

हेकृ = हेत्वर्थ कृदन्त

( ) = इस प्रकार के कोष्ठक में मूल शब्द रक्खा गया है।

[( )+( )+( ) ....]

इस प्रकार के कोष्ठक के अन्दर + चिह्न किन्हीं शब्दों में संधि का द्योतक है। यहाँ अन्दर के कोष्ठकों में गाथा के शब्द ही रख दिये गये हैं।

[( )-( )-( )........]

इस प्रकार के कोष्ठक के अन्दर '-' चिह्न समास का द्योतक है।

• जहाँ कोष्ठक के बाहर केवल संख्या (जैसे 1/1, 2/1 ....आदि) ही लिखी है, वहाँ उस कोष्ठक के अन्दर का शब्द 'संज्ञा' है।

• जहाँ कर्मवाच्य, कृदन्त आदि प्राकृत के नियमानुसार नहीं बने हैं, वहाँ कोष्ठक के बाहर 'अनि' भी लिखा गया है।

1/1 अक या सक = उत्तम पुरुष/एकवचन

1/2 अक या सक = उत्तम पुरुष/बहुवचन

2/1 अक या सक = मध्यम पुरुष/एकवचन

2/2 अक या सक = मध्यम पुरुष/बहुवचन

3/1 अक या सक = अन्य पुरुष/एकवचन

3/2 अक या सक = अन्य पुरुष/बहुवचन

1/1 = प्रथमा/एकवचन
1/2 = प्रथमा/बहुवचन
2/1 = द्वितीया/एकवचन
2/2 = द्वितीया/बहुवचन
3/1 = तृतीया/एकवचन
3/2 = तृतीया/बहुवचन
4/1 = चतुर्थी/एकवचन
4/2 = चतुर्थी/बहुवचन
5/1 = पंचमी/एकवचन
5/2 = पंचमी/बहुवचन
6/1 = षष्ठी/एकवचन
6/2 = षष्ठी/बहुवचन
7/1 = सप्तमी/एकवचन
7/2 = सप्तमी/बहुवचन
8/1 = संबोधन/एकवचन
8/2 = संबोधन/बहुवचन

व्याकरणिक विश्लेषण एवं शब्दार्थ

1. सुयं (सुय) भूकृ 1/1 अनि मे (अम्ह) 3/1 स आउसं (आउसं) 8/1 वि अनि तेणं (त) 3/1 स भगवया (भगवया) 3/1 अनि एवमक्खायं [(एवं)+(अक्खायं)] एवं (अ) = इस प्रकार. अक्खायं (अक्खाय) भूकृ 1/1 अनि इहमेगेसिं [(इहं)+(एगेसिं)] इहं (अ) = यहाँ. एगेसिं[1] (एग) 6/2 वि णो (अ) = नहीं सण्णा (सण्णा) 1/1 भवति (भव) व 3/1 अक तं जहा (अ) = जैसे

स्त्री
पुरत्थिमातो (पुरत्थिम—→पुरत्थिमा) 5/1 वि वा (अ) = या दिसातो (दिसा) 5/1 आगतो[2] (आगत) भूकृ 1/1 अनि अहमंसि [(अहं)+(अंसि)] अहं (अम्ह) 1/1 स. अंसि (अस) व 1/1 अक
स्त्री
दाहिणाओ (दाहिण—→दाहिणा 5/1 वि पच्चत्थिमातो
स्त्री
(पच्चत्थिम-→पच्चत्थिमा) 5/1 वि उत्तरातो (उत्तर-→उत्तरा)
स्त्री
5/1 वि उड्ढातो (उड्ढ—→उड्ढा) 5/1 वि अधे (अ) = नीचे की
तर प्रत्यय स्त्री
अन्नतरीतो[3] (अन्न——→ अन्नतर—→ अन्नतरी) 5/2 वि दिसातो (दिसा) 5/2 अणुदिसातो अणुदिसा) 5/2

---

1. कभी कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग सप्तमी विभक्ति के स्थान पर होता है (हैम प्राकृत व्याकरण: 3-134)
2. 'गति' अर्थ में भूतकालिक कृदन्त कर्तृवाच्य में भी होता है।
3. निर्धारण अर्थ में 'तर' प्रत्यय होता है (अभिनव प्राकृत व्याकरण पृष्ठ 429)

एवमेगेसिं [(एवं + एगेसिं)] एवं (अ) = इसी प्रकार. एगेसिं[1] (एग) 6/2 वि णो (अ) = नहीं णातं (णात) 1/1 वि भवति (भव) व 3/1 अक अत्थि (अ) = है मे (अम्ह) 6/1 स आया (आय) 1/1 उववाइए (उववाइअ) 1/1 वि णत्थि (अ) = नहीं है के (क) 1/1 सवि अहं (अम्ह) 1/1 स आसी (अस) भू 1/1 अक वा (अ) = या इओ (अ) = इस लोक से चुते (चुत) भूकृ 1/1 अनि पेच्चा (अ) = आगामी जन्म में भविस्सामि (भव) भवि 1/1 अक

शब्दार्थ

1. सुयं = सुना हुआ। मे = मेरे द्वारा। आउसं = हे आयुष्मन् ! तेणं भगवया = उन भगवान् के द्वारा। एवं = इस प्रकार। अक्खायं = कहा गया। इहं = यहाँ। एगेसिं = कई के —कई में। णो = नहीं। सण्णा = होश। भवति = होता है। तं जहा = जैसे।
   वा = या। पुरत्थिमातो दिसातो = पूर्वी दिशा से। आगतो = आया। अहं = मैं। अंसि = हूं। दाहिणाओ दिसाओ = दक्षिण दिशा से। पच्चत्थिमातो दिसातो = पश्चिमी दिशा से। उत्तरातो दिसातो = उत्तर दिशा से। उड्ढातो दिसातो = ऊपर की दिशा से। अधे दिसातो = नीचे की दिशा से। अन्नतरीतो दिसातो = अन्य ही दिशाओं से। अणु दिसातो = ईशान कोण आदि दिशाओं से। एवं = इसी प्रकार। एगेसिं = कई के—कई के द्वारा। णो = नहीं। णातं = समझा हुआ।

   भवति = होता है। अत्थि = है। मे = मेरी। आया = आत्मा उववाइए = पुनर्जन्म लेने वाली। णत्थि = नहीं है। के = कौन ? अहं = मैं। आसी = था।

---

1. कभी कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग तृतीया विभक्ति के स्थान पर होता है (हैम प्राकृत व्याकरण: 3-134)

के = क्या ? इश्रो = इस लोक से। चुते = अलग हुआ। वा = या पेच्चा = आगामी जन्म में। भविस्सामि = होऊंगा।

2. से ज्जं[1] = से (त) 1/1 सवि पुण (अ) = इसके विपरीत जाणेज्जा
स्वार्थिक'य'
(जाण) व 3/1 सक सहसम्मुइयाए [(सह) वि—(सम्मुइ——→
स्त्री
सम्मुइय—→सम्मुइया) 3/1] परवागरणेणं [(पर) वि-(वागरण) 3/1] अण्णेसिं (अण्ण) 6/2 वि वा (अ) = अथवा अंतिए (अंतिअ) 7/1 वि सोच्चा (सोच्चा) संकृ अनि

2. से ज्जं = वह। पुण = इसके विपरीत। जाणेज्जा = जान लेता है। सहसम्मुइयाए = स्वकीय स्मृति के द्वारा। पर वागरणेणं = दूसरों के कथन के द्वारा। अण्णेसिं = दूसरों के। वा = अथवा। अंतिए = समीप में। सोच्चा = सुनकर।

3. से (त) 1/1 सवि आयावादी [(आया[2])-(वादी) 1/1 वि] लोगावादी [(लोगा[2])-(वादि) 1/1 वि] कम्मावादी [(कम्मा[2])-(वादि) 1/1 वि] किरियावादी [(किरिया)-(वादि) 1/1 वि]

3. से = वह। आयावादी = आत्मा को माननेवाला। लोगावादी = लोक को मानने वाला। कम्मावादी = कर्म-(बन्धन) को मानने वाला। किरियावादी = क्रियाओं को मानने वाला।

4. अपरिण्णायकम्मे [(अपरिण्णाय) वि—(कम्म) 1/1] खलु (अ) = सचमुच अयं (इम) 1/1 सवि पुरिसे (पुरिस) 1/1 जो (ज) 1/1 सवि इमाओ (इमा) 5/2 सवि दिसाओ (दिसा) 5/2 वा (अ) = या अणुदिसाओ (अणुदिसा) 5/2 अणुसंचरति (अणुसंचर व 3/1

---

1. पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 623।
2. समासगत शब्दों में रहे हुए स्वर ह्रस्व के स्थान पर कभी-कभी दीर्घ हो जाते हैं। (हैम प्राकृत व्याकरण : 1–4)

सक सव्वाओ (सव्वा) 5/2 वि सहेति (सह) व 3/1 सक
स्त्री
अणेगरूवाओ (अणेगरूव→अणेगरूवा) 5/2 जोणीओ (जोणि) 5/2 संधेति (संध) व 3/1 सक विरूवरूवे [(विरूव) वि (रूव) 2/2] फासे (फास) 2/2 पडिसंवेदयति (पडिसंवेदयति) व 3/1 सक अनि

4. अपरिण्णायकम्मे = क्रिया समझी हुई नहीं। खलु = सचमुच। अयं = यह। पुरिसे = मनुष्य। जो = जो। इमाओ = इन। दिसाओ = दिशाओं से। वा = या। अणुदिसाओ = अनुदिशाओं से। अणुसंचरति = परिभ्रमण करता है। सव्वाओ दिसाओ = सब दिशाओं से। सव्वाओ अणदिसाओ = सब अनुदिशाओं से। सहेति = सहन करता है। अणेगरूवाओ जोणीओ = अनेक प्रकार की योनियों से। संधेति = जोड़ता है। विरूवरूवे = अनेक रूपों को। फासे = स्पर्शों को। पडिसंवेदयति = अनुभव करता है।

5. तत्थ (अ) = उसके लिए। खलु (अ) = ही भगवता (भगवाता 3/1
स्त्री
अनि परिण्णा (परिण्णा) 1/1 पवेदिता (पवेदित→पवेदिता) 1/1 वि इमस्स (इम) 4/1 सवि चेव (अ) = ही जीवियस्स (जीविय) 4/1 परिवंदण-माणण-पूयणाए [(परिवंदण-(माणण - (पूयण) 4/1] जाती-मरण-मोयणाए (जाती)[1] (मरण)-मोयण 4/1] दुक्खपडिघात-हेतुं (दुक्ख)-(पडिघात)-(हेतु) 1/1]

5. तत्थ = उसके लिए। खलु = ही। भगवता = भगवान् के द्वारा। परिण्णा = ज्ञान। पवेदिता = दिया हुआ। इमस्स चेय जीवियस्स = इस ही जीवन के लिए। परिवंदण-माणाण-पूयणाए = प्रशंसा, आदर तथा पूजा के लिए। जाती-मरणमोयणाए = जन्म, मरण तथा मोक्ष के लिए। दुक्खपडिघात हेतुं = दुःखों को दूर हटाने के लिए।

---

1. समासगत शब्दों में रहे हुए स्वर ह्रस्व के स्थान पर कभी-कभी दीर्घ हो जाते हैं। (हैम प्राकृत व्याकरण: 1-4)

6. एतावंति[1] (एतावंति) 1/2 वि अनि सव्वावंति (अ) = सम्पूर्ण लोगंसि (लोग) 7/1 कम्मसमारंभा [(कम्म)-(समारंभ) 1/2] परिजाणियव्वा (परिजाण) विधि कृ 1/2 भवंति (भव) व 3/2 अक

6. एतावंति = इतने। सव्वावंति = सम्पूर्ण। लोगंसि = लोक में। कम्मसमारंभा = क्रियाओं के प्रारम्भ। परिजाणियव्वा = समझे जाने योग्य। भवंति = होते हैं।

7. जस्सेते [(जस्स) + (एते)] जस्स[2] (ज) 6/1. एते (एत) 1/2 सवि लोगंसि (लोग) 7/1 कम्मसमारंभा [(कम्म)-(समारंभ) 1/2] परिण्णाया (परिण्णाय) 1/2 वि भवंति (भव) व 3/2 अक से (त) 1/1 सवि हु (अ) = ही मुणी (मुणि) 1/1 वि परिण्णायकम्मे [(परिण्णाय) वि-(कम्म) 1/1] त्ति (अ) = इस प्रकार वेमि (ब्रू) व 1/1 सक

7. जस्स = जिसके→जिसके द्वारा। एते = इन। लोगंसि = लोक में। कम्मसमारंभा = क्रियाओं के प्रारंभ। परिण्णाया = समझे हुए। भवंति = होते हैं। से = वह। हु = ही। मुणी = ज्ञानी। परिण्णायकम्मे = क्रिया-(समूह) जाना हुआ। त्ति = इस प्रकार। वेमि = कहता हूं।

8. सूत्र 5 का व्याकरणिक विश्लेषण देखें। से (त) 1/1 सवि सयमेव [(सयं) + (एव)] सयं (अ) = स्वयं. एव (अ) = ही पुढविसत्थं [(पुढवि) —(सत्थ) 2/1] समारंभति (समारंभ) व 3/1 सक अण्णेहिं (अण्ण) 3/2 सवि वा (अ) = या समारंभावेति (समारंभ—आवे —→समारंभावे) प्रेरक व 3/1 सक अण्णे (अण्ण) 2/2 सवि समारंभंते (समारंभ) वकृ 2/2 समणुजाणति (समणुजाण) व 3/1 सक तं

---

1. 'एतावंति' नपु. लिंग का बहुवचन है और यह 'समारंभा' (पु) का विशेषण है—विचारणीय है (एतावत्→एतावन्ति)
2. कभी-कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग तृतीया विभक्ति के स्थान पर होता है (हैम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

(त) 1/1 सवि से (त) 6/1 स अहिताए (अहित) 4/1 से (त) 4/1 स अवोहीए (अबोहि) 6/1

8. इमस्स चेव जीवियस्स = इस ही जीवन के लिए। परिवंदण–माणण–पूयणाए = प्रशंसा, आदर तथा पूजा के लिए। जाती–मरण–मोयणाए = जन्म, के कारण, मरण के कारण तथा मोक्ष के लिए। दुक्ख पडिघात हेउं (दुक्ख–पडिघात–हेउं) = दु:खों को, दूर हटाने के, लिए। से = वह। सयमेव (सयं + एव) = स्वयं ही। पुढविसत्थं = पृथ्वीकायिक जीव-समूह को। समारंभति = हिंसा करता है। अण्णेहिं = दूसरों के द्वारा। वा = या। समारंभावेति = हिंसा करवाता है। अण्णे = दूसरों को। समारंभंते = हिंसा करते हुए। समणुजाणति = अनुमोदन करता है। तं = वह। से = उसके। अहिताए = अहित के लिए। से = उसके लिए। अवोहीए = अध्यात्महीन बने रहने का।

9. *सूत्र 5 एवं 8 का व्याकरणिक विश्लेपण देखें। उदयसत्थं [(उदय)–*(सत्थ) 2/1] अबोधीए (अवोधि) 6/1

9. सूत्र 8 के शब्दार्थ देखें। उदयसत्थं = जलकायिक जीव–समूह। समारभति = हिंसा करता है। समारभावेति = हिंसा करवाता है। समारभंते = हिंसा करते हुए। अवोधीए = अध्यात्महीन बने रहने का।

10. सूत्र 5 एवं 8 का व्याकरणिक विश्लेपण देखें। अगणिसत्थं [(अगणि) –(सत्थ)2/1] समारभति (समारभ) व 3/1 सक समारभावेति आवे (समारभ—→समारभावे) प्रेरक व 3/1 सक समारभमाणे (समारभ) वक्र 2/2 अबोधीए (अवोधि)6/1

10. सूत्र 8 व 9 के शब्दार्थ देखें। अगणिसत्थं = अग्निकायिक जीव-समूह। समारभमाणे = हिंसा करते हुए।

11. सूत्र 5, 8 एवं 10 का व्याकरणिक विश्लेपण देखें। वणस्सतिसत्थं [(वणस्सति)–(सत्थ) 2/1]

11. सूत्र 8 व 9 व 10 के शब्दार्थ देखें। वणस्सतिसत्थं = वनस्पतिकायिक जीव–समूह।

12. से (त) 1/1 सवि बेमि (बू) व 1/1 सक इमं (इम) 1/1 सवि पि (अ) = भी जातिधम्मयं [(जाति)-(धम्म) 1/1 स्वार्थिक 'य'] एयं (एय) 1/1 सवि वुड्ढिधम्मयं [(वुड्ढि)-(धम्म) 1/1 स्वार्थिक 'य'] चित्तमंतयं (चित्तमंतय) 1/1 वि छिन्नं (छिन्नं) भूकृ 1/1 अनि मिलाति (मिला) व 3/1 अक आहारगं (आहारग) 1/1 वि अणितियं (अणितिय) 1/1 वि असासयं (असासय) 1/1 वि चयोवचइयं [(चय) + (ओवचइयं)] [(चय]-(ओवचइय→ अवचइय) 1/1 वि] विप्परिणामधम्मयं [(विप्परिणाम)-(धम्म) 1/1 स्वार्थिक 'य']

12. से = वह। बेमि = कहता हूं। इमं = यह। एयं = यह। पि = भी। जातिधम्मयं = उत्पत्ति स्वभाव वाला/वाली। वुड्ढिधम्मयं = वढ़ोतरी स्वभाव वाला/वाली। चित्तमंतयं = चेतना वाला/वाली। छिण्णं = कटा/कटी हुआ/हुई। मिलाति = उदास होता है/होती है। आहारगं = आहार करने वाला/वाली। अणितियं = नाशवान्। असासयं = हमेशा न रहने वाला/वाली। चयोवचइयं (चय-ओवचइयं) = वढने वाला/वाली और क्षयवाला/वाली। विप्परिणामधम्मयं = परिवर्तनशील स्वभाव वाला/वाली।

13. सूत्र 5, 8 एवं 10 का व्याकरणिक विश्लेषण देखें। तसकायसत्थं [(तसकाय)-(सत्थ) 2/1]

13. सूत्र 8, 9 व 10 के शब्दार्थ देखें। तसकायसत्थं = त्रसकाय-जीव-समूह।

14. से[1] (अ) = वाक्य की शोभा। बेमि (बू) व 1/1 सक अप्पेगे [(अप्प) + (एगे)] [(अप्प)-(एग) 1/2 सवि] अच्चाए (अच्चा) 4/1 वधेंति (वध) व 3/2 सक अजिणाए (अजिण) 4/1 मंसाए (मंस) 4/1 वहेंति (वह) व 3/2 सक सोणिताए (सोणित) 4/1 हिययाए (हियय) 4/1 वहिंति (वह) व 3/2 सक आर्ष प्रयोग एवं (अ) = इसी प्रकार पित्ताए (पित्त) 4/1 वसाए (वसा 4/1 पिच्छाए (पिच्छ) 4/1 पुच्छाए (पुच्छ)

1. 'से' शब्द का यहां कोई अर्थ नही है तथा यह वाक्य सजाने के काम आया है। (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 624)

4/1 वालाए (वाल) 4/1 सिंगाए (सिंग) 4/1 विसाणाए (विसाण) 4/1 दंताए (दंत) 4/1 दाढाए (दाढ) 4/1 नहाए (नह) 4/1 ण्हारुणीए (ण्हारुणी) 4/1 अट्ठिए[1] (अट्ठि) 4/1 अट्ठिमिजाए (अट्ठिमिजा) 4/1 अट्ठाए (अट्ठ) 4/1 अणट्ठाए (अणट्ठ) 4/1 हिंसिसु (हिंस) भू.3/2 सक मे (अम्ह) 6/1 स त्ति (अ) = इस प्रकार वा(अ) = संभवतः हिंसंति (हिंस) व 3/2 सक हिंसिस्संति (हिंस) भवि 3/2 सक णे (त) 2/2 स

14. से = वाक्य की शोभा। बेमि = कहता हूं। अप्पेगे (अप्प–एगे) = कुछ मनुष्य। अच्चाए = पूजा–सत्कार के लिए। वधेंति = वध करते हैं। अजिणाए = हरिण आदि के चमड़े के लिए। मंसाए = मांस के लिए। वहेंति = वध करते हैं। सोणिताए = खून के लिए। हिययाए = हृदय के लिए। वहिंति = वध करते हैं। एवं = इसी प्रकार। पित्ताए = पित्त के लिए। वसाए = चर्बी के लिए। पिच्छाए = पाँख के लिए। पुच्छाए = पूंछ के लिए। वालाए = बाल के लिए। सिंगाए = सींग के लिए। विसाणाए = हाथी आदि के दांत के लिए। दंताए = दाँत के लिए। दाढाए = दाढ के लिए। नहाए = नख के लिए। ण्हारुणीए = स्नायु के लिए। अट्ठिए = हड्डी के लिए। अट्ठिमिजाए = हड्डी के भीतरी रस के लिए। अट्ठाए = किसी उद्देश्य के लिए। अणट्ठाए = बिना किसी उद्देश्य के। अप्पेगे (अप्प–एगे) = कुछ मनुष्य। हिंसिसु = हिंसा की थी। मे = मेरे। त्ति = इस प्रकार। वा = संभवतः। हिंसंति = हिंसा करते है। हिंसिस्संति = हिंसा करेंगे। णे = उनको। वधेंति = वध करते हैं।

15. सूत्र 5, 8 एवं 10 का व्याकरणिक विश्लेषण देखें। वाउसत्थं [(वाउ) –(सत्थ) 2/1]

15. सूत्र 8, 9, व 10 का शब्दार्थ देखें। वाउसत्थं = वायुकायिक जीव–समूह।

---

1. नियमानुसार 'अट्ठीए' होना चाहिए। यह अपवाद प्रतीत होता है।

16 से (त) 1/1 सवि त्तं (त) 2/1 स संबुज्भमाणे (संबुज्भ) वक्त 1/1 आयाणीयं (आयाणीय) विधिकृ 2/1 अनि समुट्ठाए (समुट्ठा) विधि 1/1 अक सोच्चा (सोच्चा) संकृ अनि भगवतो (भगवतो) 5/1 अनि अणगाराणं[1] (अणगार) 6/2 इहमेगेसिं [(इहं)+(एगेसिं)] इहं (अ) =यहाँ. एगेसिं[2] (एग) 6/2 वि णातं (णात) 1/1 वि भवति (भव) व 3/1 अक एस (एत) 1/1 सवि खलु (अ) = निश्चय ही गंथे (गंथ) 7/1 मोहे (मोह) 7/1 मारे (मार) 7/1 निरए (निरअ) 7/1

16 से = वह। त्तं = उसको। संबुज्भमाणे = समझता हुआ। आयाणीयं = ग्रहण किये जाने योग्य को। समुट्ठाए = उठे। सोच्चा = सुनकर। भगवतो = भगवान् से। अणगाराणं = साधुओं के → साधुओं से। इहमेगेसिं (इहं+एगेसिं) = यहाँ कुछ के → कुछ के द्वारा। णातं = सीखा हुआ। भवति = होता है। एस = यह। खलु = निश्चय ही। गंथे = बन्धन में। मोहे = मूर्च्छा में। मारे = अनिष्ट में। णिरए = नरक में।

17 तं (तं) 2/1 सवि परिण्णाय (परिण्णा) संकृ मेहावी (मेहावि) 1/1 वि णेव (अ) = कभी भी नहीं सयं (अ) = स्वयं छज्जीवणिकायसत्थं [(छ)-(ज्जीवणिकाय)-(सत्थ) 2/1] समारभेज्जा (समारभ व 3/1 सक णेवऽण्णेहिं [(णेव)+(अण्णेहिं)] णेव (अ) = कभी भी आवे नहीं। अण्णेहिं (अण्ण) 3/2 सवि. समारभावेज्जा (समारभ→ समारभावे) प्रे. व 3/1 सक णेवऽण्णे [(णेव)+(अण्णे)] णेव (अ) = कभी भी नहीं। अण्णे (अण्ण) 2/2 समारभंते (समारभ) वकृ 2/2 समणुजाणेज्जा (समणुजाण) व 3/1 सक

---

1. कभी-कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पंचमी विभक्ति के स्थान पर होता है। (हैम प्राकृत व्याकरण: 3-134)
2. कभी-कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग तृतीया विभक्ति के स्थान पर होता है। (हैम प्राकृत व्याकरण: 3-134)

जस्सेते [(जस्स) + (एते)] जस्स[1] (ज) 6/1. एते (एत) 1)2 सवि छज्जीवणिकायसत्थसमारंभा [(छ)-(ज्जीवणिकाय)-(सत्थ)-(समारंभ 1/2] परिण्णाया (परिण्णाय) 1/2 वि भवंति (भव) व 3/2 अक से (त) 1/1 सवि हु (अ)=ही मुणी (मुणि) 1/1 वि परिण्णायकम्मे [(परिण्णाय) वि—(कम्म) 1/1] त्ति (अ)=इस प्रकार बेमि (बू) व 1/1 सक

17. तं=उसको। परिण्णाय=समझकर। मेहावी=बुद्धिमान। णेव= कभी भी नहीं। सयं=स्वयं। छज्जीवणिकायसत्थं(छ-ज्जीवणिकाय-सत्थं =छ: जीव-समूह, प्राणी-समूह। समारभेज्जा=हिंसा करता है। णेवऽण्णेहि (णेव+अण्णेहि)=कभी भी नहीं दूसरों के द्वारा। समारभावेज्जा=हिंसा करवाता है। णेवऽण्णेहि (णेव+अण्णे)=कभी भी नहीं, दूसरों को। समारभंते=हिंसा करते हुए (को)। समणुजाणेज्जा =अनुमोदन करता है। जस्सेते(जस्स+एते)=दूसरे के→दूसरे के द्वारा, इन छज्जीवणिकायसत्थसमारंभा (छ-ज्जीवणिकाय-सत्थ-समारंभा)= छ: जीव-समूह, प्राणी-समूह के हिंसा कार्य। परिण्णाया=समझे हुए। भवंति=होते हैं। से=वह। हु=ही। मुणी=ज्ञानी। परिण्णायकम्मे (परिण्णाय-कम्मे)=जाना हुआ, हिंसा-कार्य। त्ति=इस प्रकार। बेमि=कहता हूं।

18. अट्टे (अट्ट) 1/1 वि लोए (लोअ) 1/1 परिजुण्णे (परिजुण्ण) 1/1 वि दुस्संबोधे (दुस्संबोध) 1/1 वि अविजाणए (अविजाणअ) 1/1 वि अस्सि (इम) 7/1 सवि लोए (लोअ) 7/1 पव्वहिए (पव्वहिअ) भूकृ 1/1 अनि

---

1. कभी कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग तृतीया विभक्ति के स्थान पर होता है। (हेम प्राकृत व्याकरण, 3-134)

18. अट्टे = पीड़ित । लोए = मनुष्य । परिजुण्णे = दरिद्र । दुस्संबोधे = ज्ञान देना कठिन । अविजाणए = समझने वाला नहीं । अस्सि लोए = इस लोक में । पव्वहिए = अति दुःखी ।

19. जाए (जा) 3/1 स सद्धाए (सद्धा) 3/1 णिक्खंतो (णिक्खंत) भूकृ 1/1 अनि तमेव [(तं)+(एव)] तं (त) 2/1 स. एव (अ) = ही अणुपालिया (अणुपाल) संकृ विजहित्ता (विजह) संकृ विसोत्तियं (विसोत्तिय) 2/1

19. जाए = जिससे । सद्धाए = प्रबल इच्छा से । णिक्खंतो = निकला हुआ । तमेव (तं+एव) = उसको ही । अणुपालिया = बनाए रखकर । विजहित्ता = छोड़कर । विसोत्तियं = हिंसात्मक चिन्तन को ।

20. पणया (पणय) भूकृ 1/2 अनि वीरा (वीर) 1/2
महावीहिं = कभी कभी द्वितीया विभक्ति का प्रयोग सप्तमी के स्थान पर होता है । (है. प्रा. व्या. 3/135) (महावीहि) ?/1

20. पणया = झुके हुए । वीरा = वीर । महावीहिं महापथ को→महापथ पर ।

21. लोगं (लोग) 2/1 च (अ) = अच्छी तरह से आणाए (आणा) 3/1 अभिसमेच्चा (अभिसमेच्चा) संकृ अनि अकुतोभयं (अकुतोभय) 2/1 वि से (अ) = वाक्य की शोभा बेमि (बू) व 1/1 सक णेव (अ) = कभी न सयं (अ) = स्वयं लोगं (लोग) 2/1 अब्भाइक्खेज्जा (अब्भाइक्ख) विधि 3/1 सक अत्ताणं (अत्ताण) 2/1 जे (ज) 1/1 सवि अब्भाइक्खति (अब्भाइक्ख) व 3/1 सक से (त) 1/1 सवि

21. लोगं = प्राणी-समूह को । च = अच्छी तरह से । आणाए = आज्ञा से । अभिसमेच्चा = जानकर । अकुतोभयं = निर्भय । से = वाक्य की शोभा । बेमि = कहता हूं । णेव = कभी न । सयं = स्वयं । लोगं = प्राणी-समूह पर । अब्भाइक्खेज्जा = झूठा आरोप लगाये । अत्ताणं = निज पर । जे = जो । अब्भाइक्खति = झूठा आरोप लगाता है । से = वह ।

22. जे (ज) 1/1 सवि गुणे (गुण) 1/1 से(त) 1/1 सवि आवट्टे (आवट्ट) 1/1 उड्ढं (अ) = ऊपर की ओर अहं (अ) = नीचे की ओर तिरियं (अ) = तिरछी दिशा में पाईणं (अ) = सामने की ओर पासमाणे (पास) वकृ 1/1 रूवाइं (रूव) 2/2 पासति (पास) व 3/1 सक सुणमाणे (सुण) वकृ 1/1 सद्दाइं (सद्द) 2/2 सुणेति (सुण) व 3/1 सक मुच्छमाणे (मुच्छ) वकृ 1/1 रूवेसु(रूव) 7/2 मुच्छति (मुच्छ) व 3/1 सक सद्दासु (सद्द) 7/2 यावि (अ) = और भी
एस (एत) 1/1 स लोगे (लोग) 1/1 वियाहिते (वियाहिते) भूकृ 1/1 अनि एत्थ (अ) = यहां पर अगुत्ते (अगुत्त) 1/1 वि अणाणाए (अणाणा) 7/1 पुणो पुणो (अ) = बार बार गुणासाते [(गुण+(आसाते)][(गुण-(आसात) 7/1] वंकसमायारे [(वंक) - (समायार) 7/1 वि] पमत्ते (पमत्त) 1/1 वि गारमावसे [(गारं)+(आवसे)] गारं (गार) 2/1. आवसे[1] (आवस) व 3/1 सक

22. जे = जो । गुणे = दुश्चरित्रता । से = वह । आवट्टे = चक्कर काटना । उड्ढं = ऊपर की ओर । अहं = नीचे की ओर । तिरियं = तिरछी दिशा में । पाईणं = सामने की ओर । पासमाणे = देखता हुआ । रूवाइं = रूपों को । पासति = देखता है । सुणमाणे = सुनता हुआ । सद्दाइं = शब्दों को । सुणेति = सुनता है । मुच्छमाणे = मूच्छित होता हुआ । रूवेसु = रूपों में । मुच्छति = मूच्छित होता है । सद्देसु = शब्दों में । यावि = और भी । एस = यह । लोगे = संसार । वियाहिते = कहा गया । एत्थ = यहां पर । अगुत्ते = मूच्छित । अणाणाए = आज्ञा में नहीं । पुणो पुणो = बार बार । गुणासाते (गुण-आसाते) = दुश्चरित्रता के स्वाद में । वंकसमायारे वंक-समायारे) = कुटिल आचरण में । पमत्ते = प्रमादी । गारमावसे (गारं + आवसे) = घर में निवास करता है ।

---

1. 'आवस' का प्रयोग कर्म (द्वितीया) के साथ होता है ।

23. णिज्झाइत्ता (णिज्झा) संकृ पडिलेहित्ता (पडिलेह) संकृ पत्तेयं[1] (अ) = प्रत्येक परिणिव्वाणं (परिणिव्वाण) 2/1 सव्वेसिं (सव्व) 4/2 सवि पाणाणं (पाण) 4/2 भूताणं (भूत) 4/2 जीवाणं (जीव) 4/2 सत्ताणं (सत्त) 4/2 अस्सातं (अस्सात) 1/1 अपरिणिव्वाणं (अपरिणिव्वाण) 1/1 महब्भयं (महब्भय) 1/1 वि दुक्खं (दुक्ख) 1/1 वि ति (अ) = इस प्रकार। बेमि (बू) व 1/1 सक

तसंति (तस) व 3/1 अक पाणा (पाण) 1/2 पदिसो[2] (पदिसो) 2/2 अनि दिसासु (दिसा) 7/2 य (अ) = तथा तत्थ तत्थ (अ) = प्रत्येक स्थान पर पुढो (अ) = अलग-अलग पास (पास) विधि 2/1 सक। आतुरा (आतुर) 1/2 वि। परितावेंति (परितावे[3]) व प्रेरक 3/2 सक संति (अस) व 3/2 अक पाणा (पाण) 1/2 पुढो (अ) = अलग-अलग सिता = सिया (अ) = भी (अवधारण अर्थ में)।

23. णिज्झाइत्ता = विचार करके। पडिलेहित्ता = देख करके। पत्तेयं = प्रत्येक। परिणिव्वाणं = शान्ति को। सव्वेसिं = सब (के लिए)। पाणाणं = प्राणियों के लिए। भूताणं = जन्तुओं के लिए। जीवाणं = जीवों के लिए। सत्ताणं = चेतनवानों के लिए। अस्सातं = पीड़ा। अपरिणिव्वाणं

---

1. बहुधा विशेषणात्मक बल के साथ प्रयुक्त होता है।

स्त्री प्राकृतीकरण

2. प्रदिश् ——→ प्रदिशः (द्वितीया बहुवचन) ——→ पदिसो

(Everywhere (प्रत्येक स्थान पर) Monier Williams : Sans-Eng. Dictionery P. 679]

कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हैम प्राकृत व्याकरण: 3-137)

प्रेरक

3. तव——→ तावे (प्राकृत मार्गोपदेशिका पृष्ठ, 320)

=अशान्ति। महब्भयं=महाभयंकर। दुक्खं=दुःख-युक्त। ति=इस प्रकार। बेमि=कहता हूं। तसंति=भयभीत रहते हैं। पाणा=प्राणी। पदिसो=प्रत्येक स्थान पर। दिसासु दिशाओं में। य=तथा। तत्थ तत्थ=प्रत्येक स्थान पर। पुढो=अलग-अलग। पास=देख। आतुरा= मूर्च्छित। परितावेंति=दुख पहुंचाते हैं। संति=होते हैं। पाणा= प्राणी। पुढो—अलग-अलग। सिता—भी।

24. जे (ज) 1/1 सवि अज्झत्थं (अज्झत्थ) 2/1 जाणति (जाण) व 3/1 सक से (त) 1/1 सवि बहिया (अ)=बाहर की ओर एतं (एता) 2/1 सवि तुलमण्णेसिं [(तुलं)+(अण्णेसिं)] तुलं (तुला) 2/1 अण्णेसिं (अण्णेसि) 1/1 वि

24. जे=जो। अज्झत्थं=अध्यात्म को। जाणति=जानता है। से=वह। बहिया=बाहर की ओर। एतं=इसको। तुलमण्णेसिं (तुलं+अण्णेसिं) तराजू को, खोज करने वाला।

25. एत्थं[1] (अ)=यहाँ। पि=यद्यपि। जाण (जाण) विधि 3/1 सक उवादीयमाणा [(उव+(आदीयमाणा)] उव (अ)=निकटता अर्थ में प्रयुक्त आदीयमाणा[2] (आदिय) वकृ 1/2 जे (ज) 1/2 सवि आयारे (आयार) 7/1 ण (अ)=नहीं। रमंति (रम) व 3/2 अक आरंभमाणा (आरंभ) वकृ 1/2 विणयं (विणय) 2/1 (वयंति) (वय) व 3/2 सक छंदोवणीया [(छंद)+(उवणीया)] [(छंद)-(उवणीय) भूकृ 1/2अनि] अज्झोववण्णा [(अज्झ)+(उव)+(वण्णा)]। अज्झ (अ)=अत्यन्त उव (अ)=दोष वण्णा (वण्ण) भूकृ 1/2 अनि आरंभसत्ता [(आरंभ)-(सत्त) भूकृ 1/2 अनि]।

---

1. यहाँ अनुस्वार का आगम हुआ है। (हे.प्रा. व्या. : 1-26)
2. यहाँ 'दी' दीर्घ हुआ है। अर्द्धमागधी में ऐसा हो जाता है। (पिशलः पृ. 135)

पकरेंति[1] (पकर) व 3/2 सक संगं (संग) 2/1 से (त) 1/1 सवि वसुमं[2] (वसुमन्त → वसुमं) 1/1 वि सव्वसमण्णागतपण्णाणेणं [(सव्व) वि-(समण्णागत) वि-(पण्णाण)3/1] अप्पाणेणं (अप्पाण)3/1 अकरणिज्जं (अ-कर) विधि कृ 2/1 पावं (पाव) 2/1। कम्मं (कम्म) 2/1 णो (अ) = नहीं। अण्णेसि (अण्णेसि) 1/1 वि।

25. एत्थं = यहाँ। पि = यद्यपि। जाण = जानो उवादीयमाणा [(उव) + (आदीयमाणा)] = निकट, समझते हुए। जे = जो। आयारे = आचार में। ण = नहीं। रमंति = ठहरते हैं। आरंभमाणा = हिंसा करते हुए। विणयं = आचार को। वयंति = कथन करते हैं। छंदोवणीया [(छंद) + (उवणीया)] = स्वच्छन्दता, प्राप्त की गई। अज्झोववण्णा [(अज्झ) + (उव) + (वण्णा)] अत्यन्त, दोष (में), डूबे हुए। आरंभसत्ता = हिंसा में, आसक्त। पकरेंति = उत्पन्न करते हैं। संगं = कर्म-बन्धन को। से = वह। वसुमं = अनासक्त। सव्वसमण्णागतपण्णाणेणं = पूरी तरह से, समता को प्राप्त, प्रज्ञा के द्वारा। अप्पाणेणं = निज के द्वारा। अकरणिज्जं = अकरणीय। पावं = हिंसक को। कम्मं = कर्म को। णो = नहीं। अण्णेसि = खोज करने वाला।

26. जे (ज) 1/1 सवि गुणे (गुण) 1/1 से (त) 1/1 सवि मूलट्ठाणे (मूलट्ठाण) 1/1 इति (अ) = इस प्रकार से (त) 1/1 सवि गुणट्ठी (गुणट्ठि) 1/1 वि महता (महता) 3/1 वि अनि परितावेण (परिताव) 3/1 वसे[3] (वस) व 3/1 सक पमत्ते (पमत्त)7/1 अहो य राओ (अ) = दिन में और रात में य = भी परितप्पमाणे (परितप्प] वकृ 1/1 कालाकालसमुट्ठायी [(काल) + (अकाल) + (समुट्ठायी)] [(काल)-

---

1. प्राकृत मार्गोपदेशिका : पृ. 141 या हे. प्रा. व्या. 3-158।
2. अभिनव प्राकृत व्याकरण: पु. 427।
3. 'वास करना' अर्थ प्रायः अधिकरण के साथ होता है।

(अकाल)-(समुट्ठायि) 1/1 वि] संजोगट्ठी [(संजोग) + (अट्ठी)] [(संजोग)—(अट्ठि) 1/1 वि] अट्ठालोभी [(अट्ठ→अट्ठ[1])—(लोभि) 1/1 वि; आलुंपे (आलुंप) 1/1 वि सहसक्कारे (सहसक्कार) 1/1 वि विणिविट्ठचित्ते (विणिविट्ठचित्त) 1/1 वि एत्थ (अ) यहाँ पर सत्थे (सत्थ) 2/2 पुणो पुणो (अ) = वार-वार

26. जे = जो । गुणे = इन्द्रियासक्ति । से = वह । मूलट्ठाणे = आधार । इति = इस प्रकार । से = वह । गुणट्ठी = इन्द्रिय-विषयाभिलाषी । महता = महान् (से) । परितावेण = दुःख से । वसे = वास करता है । पमत्ते = प्रमाद में । अहो य राओ = दिन में तथा रात में । य = भी । परितप्पमाणे = दुःखी होता हुआ । कालाकाल समुट्ठायी [(काल) + (अकाल) + (समुट्ठायी)] काल (में), अकाल (में)प्रयत्न करनेवाला । संजोगट्ठी [(संजोग) + (अट्ठी)] = संबंध का, अभिलाषी । अट्ठालोभी = धन का लालची । आलुंपे = ठगनेवाला । सहसक्कारे = विना विचार किए करने वाला । विणिविट्ठ-चित्ते = आसक्त चित्तवाला । एत्थ = यहाँ पर । सत्थे = शस्त्रों को । पुणो पुणो = वार-वार ।

27. अभिकंतं (अभिकंत) भूकृ 2/1 अनि च (अ) = ही खलु(अ) = वास्तव में वयं (वय) 2/1 सपेहाए[2] = संपेहाए (सपेह) संकृ ततो (अ) = वाद में से (त) 6/1 स एगया (अ) = एक समय मूढभावं [(मूढ) वि-(भाव) 2/1] जणयंति (जणयंति) प्रे. 3/2 सक अनि जेहिं (ज) 3/2 स वा (अ) = और सद्धि[3] (अ) = के साथ में संवसति (संवस) व 3/1 अक ते (त) 1/2 सवि व (अ) = ही णं (त) 2/1 स एगदा (अ) = एक समय णियगा (णियग) 1/2 वि पुव्वि (अ) = पहले परिवदंति

---

1. समासगत शब्दों में रहे हुए स्वर परस्पर में ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ और दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व हो जाते हैं। (हेम प्राकृत व्याकरण: 1-4)
2. स = सं (सपेहाए = संपेहाए) ।
3. सद्धि के योग में तृतीया विभक्ति होती है ।

(परिवद) व 3/2 सक सो (त) 1/1 सवि वा (अ) = भी ते (त) 2/2 स णियगे (णियग) 2/2 वि पच्छा (अ) = बाद में परिवदेज्जा (परिवद) व 3/1 सक णालं [(ण) + (अलं)] ण (अ) = नहीं. अलं[1] (अ) = पर्याप्त ते (त) 1/2 सवि तव (तुम्ह) 6/1 स ताणाए (ताण) 4/1 वा (अ) = या सरणाए (सरण) 4/1 तुमं (तुम्ह) 1/1 स पि (अ) = भी तेसिं (त) 6/2 स से (त) 1/1 सवि ण (अ) = नहीं हासाए (हास) 4/1 किड्डाए (किड्ड) 4/1 रतीए (रति) 4/1 विभूसाए (विभूसा) 4/1

27. अभिकंतं = बीती हुई । च = ही । खलु = वास्तव में । वयं = आयु को । सपेहाए = देखकर । ततो = बाद में । से = उसके । एगया = एक समय । मूढभावं = मूर्खतापूर्ण अवस्था (को) । जणयंति = उत्पन्न कर देते हैं । जेहि = जिनके । वा = और । सद्धि = साथ में । संवसति = रहता है । ते = वे । व = ही । णं = उसको । एगदा = एक समय । णियगा = आत्मीय । पुव्वि = पहले । परिवदंति = बुरा-भला कहते हैं । सो = वह । वा = भी । णियगे = आत्मीयों को । परिवदेज्जा = बुरा-भला कहता है । णालं = (ण + अलं) = नहीं, पर्याप्त । ते = वे । तव = तुम्हारे । ताणाए = सहारे के लिए । वा = या । सरणाए = सहायता के लिए । तुमं = तुम । पि = भी । तेसिं = उनके । से = वह । ण = नहीं । हासाए = मनोरंजन के लिए । किड्डाए = क्रीड़ा के लिए । रतीए = प्रेम के लिए । विभूसाए = सजावट के लिए ।

28. इच्चेवं (अ) = इस प्रकार समुट्ठिते (समुट्ठित) 1/1 वि अहोविहाराए (अहोविहार) 4/1 अंतरं (अंतर) 2/1 च (अ) = ही खलु (अ) = सचमुच इमं (इम) 2/1 सवि सपेहाए = संपेहाए (सपेह) संकृ धीरे (धीर) 1/1 वि मुहुत्तमवि [(मुहुत्तं) + (अवि)] मुहुत्तं (क्रिविअ) = क्षणभर के लिए. अवि (अ) = भी णो (अ) न पमादए (पमादं) विधि

---

1. संप्रदान के साथ 'अलं' का अर्थ 'पर्याप्त' होता है ।

3/1 अक वओ (वअ) 1/1 अच्चेति (अच्चेति) व 3/1 अक अनि जोव्वणं (जोव्वण) 1/1 च (अ) भी।

28. इच्चेवं = इस प्रकार। समुट्ठिते = सम्यक् प्रयत्नशील। अहोविहाराए = आश्चर्यकारी संयम के लिए। अंतरं = अवसर को। च = ही। इमं = इस (को)। सपेहाए = देखकर। धीरे = धीर। मुहुत्तमवि (मुहुत्तं + अवि) = क्षण भर के लिए, भी। णो = न। पमादए = प्रमाद करे। वओ = आयु। अच्चेति = वीतती है। जोव्वणं = यौवन। च = भी।

29. जीविते (जीवित) 7/1 इह (इम) 7/1 सवि जे (ज) 1/2 सवि पमत्ता (पमत्त) 1/2 वि से[1] (त) 1/1 सवि हंता (हंतु) 1/1 वि छेत्ता (छेत्तु) 1/1 वि भेत्ता (भेत्तु) 1/1 वि लुंपित्ता (लुंपित्तु) 1/1 वि विलुंपित्ता (विलुंपित्तु) 1/1 वि उद्दवेत्ता (उद्दवेत्तु) 1/1 वि उत्तासयित्ता (उत्तासयित्तु) 1/1 वि अकडं (अकड) भूकृ 2/1 अनि करिस्सामि (कर) भवि 1/1 सक त्ति (अ) = इस प्रकार मण्णमाणे (मण्ण) वकृ 1/1

29. जीविते = जीवन में। इह = इस (में)। जे = जो। पमत्ता = प्रमाद-युक्त। से = वह। हंता = मारने वाला। छेत्ता = छेदने वाला। भेत्ता = भेदने वाला। लुंपिता = हानि करने वाला। वीलुंपिता = अपहरण करने वाला। उद्दवेत्ता = उपद्रव करने वाला। उत्तासयित्ता = हैरान करने वाला। अकडं = कभी नहीं किया गया। करिस्सामि = करूँगा। त्ति = इस प्रकार। मण्णमाणे = विचारता हुआ।

30. एवं (अ) = इस प्रकार जाणित्तु (जाण) संकृ दुक्खं (दुक्ख) 2/1 पत्तेयं[2] (अ) = प्रत्येक सातं (सात) 2/1 अणभिक्कंतं (अणभिक्कंत)

---

1. किसी समुदाय विशेष का बोध कराने के लिए 'एक वचन' या बहुवचन का प्रयोग किया जा सकता है। यहाँ 'से' का प्रयोग एक वचन में है।
2. बहुधा विशेषणात्मक बल के साथ प्रयुक्त होता है।

भूकृ 2/1 अनि च (अ)=ही खलु (अ)=सचमुच वयं (वय) 2/1 सपेहाए=संपेहाय (सपेह) संकृ खणं (खण) 2/1 जाणाहि[1] (जाण) विधि 2/1 सक पंडिते (पंडित) 8/1

जाव (अ)=जब तक सोतपण्णाणा [(सोत)-(पण्णाण) 1/2] अपरिहीणा (अपरिहीण) भूकृ 1/2 अनि णेत्तपण्णाणा [(णेत्त)-(पण्णाण) 1/2] घाणपण्णाणा [(घाण)-(पण्णाण) 1/2] जीहपण्णाणा [(जीह)-(पण्णाण) 1/2] फासपण्णाणा [(फास)-(पण्णाण) 1/2] इच्चेतेहिं (इच्चेत) 3/2 वि विरूवरूवेहि [(विरूव) वि-(रूव) 3/2] पण्णाणेहि (पण्णाण) 3/2 अपरिहीणेहिं (अपरिहीण) 3/2 वि आयट्ठं [(आय)+(अट्ठ)] [(आय)-(अट्ठ) 2/1] सम्म (अ)=उचित प्रकार से समणुवासेज्जासि (समणुवास) विधि 2/1 सक त्ति (अ)=इसी प्रकार बेमि (बू) व 1/1 सक

30. एवं=इस प्रकार। जाणित्तु=समझकर। दुक्खं=दुःख (को)। पत्तेयं =प्रत्येक के। सातं=सुख (को)। अणभिक्कंतं=न बीती हुई (को)। च=ही। खलु=सचमुच। वयं=आयु को। सपेहाए=देख कर। खणं=उपयुक्त अवसर को। जाणाहि=जान। पंडिते !=हे पण्डित। जाव=जब तक। सोतपण्णाणा(सोत-पण्णाणा)=श्रवणेन्द्रिय की ज्ञान-(शक्ति)। अपरिहीणा=कम नहीं। णेत्तपण्णाणा=चक्षु-इन्द्रिय की ज्ञान (शक्ति)। घाणपण्णाणा=घ्राणेन्द्रिय की ज्ञान-(शक्ति)। जीहपण्णाणा=रसनेन्द्रिय की ज्ञान-(शक्ति)। फासपण्णाणा=स्पर्शनेन्द्रिय की ज्ञान-(शक्ति)। इच्चेतेहिं=इन इस प्रकार। विरूवरूवेहिं=अनेक भेद (वाली)। पण्णाणेहिं=ज्ञान (शक्तियों) द्वारा। अपरिहीणेहिं= अक्षीण। आयट्ठं (आय-अट्ठं)=आत्म हित को। सम्मं=उचित प्रकार से। समणुवासेज्जासि=सिद्ध कर ले। त्ति=इस प्रकार। बेमि= कहता हूँ।

---

1. कभी-कभी अकारान्त धातु के अन्तिम 'अ' के स्थान पर विधि आदि में 'आ' हो जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-158)

31 अरतिं (अरति) 2/1 आउट्टे (आउट्ट) व 3/1 सक से (त) 1/1 सवि मेधावी (मेधावि) 1/1 वि खणंसि (खण) 7/1 मुक्के (मुक्क) 1/1 वि

31 अरतिं = बेचैनी को। आउट्टे = समाप्त कर देता है। से = वह। मेधावी = प्रज्ञावान। खणंसि = पल भर में। मुक्के = बन्धनरहित।

32 अणाणाए (अणाणा 3/1 पुट्ठा (पुट्ठ) भूकृ 1/2 अनि वि (अ) = ही एगे (एग) 1/2 सवि णियंट्टति (णियट्ट) व 3/2 अक मंदा = (मंद) 1/2 वि मोहेण (मोह) 3/1 पाउडा (पाउड) भूकृ 1/2 अनि

32 अणाणाए = अनाज्ञा से। पुट्ठा = ग्रस्त। वि = ही। एगे = कुछ। णियंट्टति = रुक जाते हैं। मंदा = मूर्ख। मोहेण = आसक्ति से। पाउडा = घिरे हुए।

33 विमुक्का (विमुक्क) 1/2 वि हु (अ) = निश्चय ही ते (त) 1/2 सवि जणा (जण) 1/2 जे (ज) 1/2 सवि पारगामिणो (पारगामि) 1/2 वि लोभमलोभेण [(लोभं)+(अलोभेण)] लोभं (लोभ) 2/1. अलोभेण (अलोभ) 3/1 दुगुंछमाणे (दुगुंछ) वकृ 1/1 लद्धे (लद्ध) भूकृ 2/2 अनि कामे (काम) 2/2 णाभिगाहति [(ण)+(अभिगाहति)] ण (अ) = नहीं. अभिगाहति (अभिगाह) व 3/1 सक

33 विमुक्का = मुक्त। हु = निश्चय ही। ते = वे। जणा = मनुष्य। जे = जो। पारगामिणो = पार पहुँचने वाले। लोभमलोभेण (लोभं+अलोभेण) = अति-तृष्णा को, अतृष्णा से। दुगुंछमाणे = झिड़कता हुआ। लद्धे = प्राप्त हुए। कामे = विषय भोगों को। णाभिगाहति (ण+अभिगाहति) = नहीं, सेवन करता है।

34 णो (अ) = नहीं हीणे 1/1 वि अतिरित्ते (अतिरित्त) 1/1 वि

34 णो = नहीं। हीणे = नीच। अतिरित्ते = उच्च।

35 जीवियं (जीविय) 1/1 पुढो (अ) = अलग-अलग पियं (पिय) 1/1 वि इहमेगेसिं [(इह)+एगेसिं)] इहं (अ) = यहां. एगेसिं (एग) 4/2 स

माणवाणं (माणव) 4/2 खेत्त-वत्थु [(खेत्त)-(वत्थु) मूल शब्द 2/1]
ममायमाणाणं (ममा[1]→ममाय) वकृ 4/2
ण (अ) = नहीं एत्थ (एत) 7/1 सवि तवो (तव) 1/1 वा[2] (अ) = और दमो (दम) 1/1 णियमो (णियम) 1/1 दिस्सति (दिस्सति) व कर्म 3/1 सक अनि

35 जीवियं = जीवन। पुढो = अलग-अलग। पियं = प्रिय। इहमेगेसिं (इह + एगेसिं) = यहाँ, कुछ (के लिए)। माणवाणं = व्यक्तियों के लिए। खेत्त-वत्थु = भूमि व धन-दौलत। ममायमाणाणं = इच्छा करते हुए (के लिए)। ण = नहीं। एत्थ = उन में। तवो = तप। वा = और। दमो = आत्म-नियन्त्रण। णियमो = सीमा-बन्धन। दिस्सति = देखा जाता है।

36 इणमेव [(इणं) + (एव)] इणं (इम) 2/1 सवि. एव (अ) = निःसन्देह णावकंखंति [(ण) + (अवकंखंति)] ण (अ) = नहीं, अवकंखंति (अवकंख) व 3/2 सक धुवचारिणो (धुवचारि) 1/2 वि जे (ज) 1/2 स जणा (जण) 1/2

जाती-मरणं [(जाती[3])-(मरण) 2/1] परिण्णाय (परिण्णा) संकृ चर[2] (चर) विधि 2/1 सक संकमणे[4] (संकमण) 7/1 दढं (दढ) 7/1 वि णत्थि (अ) = नहीं है कालस्स (काल) 4/1 णागमो [(ण) + (आगमो)] ण (अ) = नहीं. आगमो (आगम) 1/1
सव्वे (सव्व) 1/2 सवि पाणा (पाण) 1/2 पिआउया [(पिअ) +

---

1. 'अ' या 'य' विकल्प से जोड़ा जाता है।
2. कभी-कभी यह प्रत्येक शब्द या उक्ति के साथ प्रयुक्त होता है।
3. समासगत शब्दों में रहे हुए स्वर ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ और दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व प्रायः हो जाते हैं। (हेम प्राकृत व्याकरण, 1-4)
4. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-135)

(आउया)] [(पिअ) वि-(आउय) 1/2] सुहसाता [(सुह[1]) वि-(सात) 1/2]

दुक्खपडिकूला [(दुक्ख)-(पडिकूल) 1/2 वि] अप्पियवधा [(अप्पिय) वि-(वध) 1/2] पियजीविणो [(पिय) वि-(जीविणो[2]) 1/2 वि अनी] जीवितुकामा (जीवितुकाम) 1/2 वि सव्वेसिं (सव्व) 4/2 सवि जीवितं (जीवित) 1/1 पियं (पिय) 1/1 वि

36 इणमेव (इणं+एव) = इस को,... ....। णावकंखंति = (ण+अवकंखंति) = नहीं चाहते हैं। जे = जो। जणा = लोग। धुवचारिणो = परमशान्ति के इच्छुक। जाती-मरणं = जन्म-मरण को। परिण्णाय = जानकर। संकमणे = संयम पर। चर = चल। दढं = दृढ। णात्थि = नहीं है। कालस्स = मृत्यु के लिए। णागमो = (ण+आगमो) = न आना।

सव्वे = सब। पाणा = प्राणी। पिआउया (पिअ+आउया = प्रिय, आयु। सुहसाता = अनुकूल, सुख। दुक्खपडिकूला = दुःख प्रतिकूल। अप्पियवधा = अप्रिय, वध। पियजीविणो = प्रिय, जिन्दा रहने वाली। जिवितुकामा = जीवन के इच्छुक। सव्वेसिं = सब के लिए। जीवितं = जीवन पियं = प्रिय।

37 तं (अ) = तो परिगिज्झ (परिगिज्झ) संकृ अनि दुपयं (दुपय) 2/1 चउप्पयं (चउप्पय) 2/1 अभिजुंजियाणं (अभिजुंज) संकृ संसिंचियाणं[3] (संसिच) संकृ तिविधेण (तिविध) 3/1 वि जा (जा) 1/1 सवि वि (अ) = भी से (त) 6/1 सवि तत्थ (अ) = उस अवसर पर मत्ता (मत्ता) 1/1 भवति (भव) व 3/1 अक अप्पा (अप्प→अप्पा) 1/1 वि वा (अ) = या बहुगा (बहुग→बहुगा) 1/1 वि से (त) 1/1 सवि

---

1. 'सुह' का अर्थ 'अनुकूल' है।
2. सामान्यतः समास के अन्त में प्रयुक्त।
3. पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 838

तत्थ (त) 7/1 स गढिते (गढित) 1/1 वि चिट्ठति (चिट्ठ) व 3/1 अक भोयणाए (भोयण) 4/1

ततो (अ)=बाद में से (त) 4/1 स एगदा (अ)=एक समय विप्परिसिट्ठं (वि–प्परिसिट्ठ) 1/1 वि संभूतं (संभूत) 1/1 वि महोवकरणं [(मह)+(उवकरणं)] [(मह)वि–(उवकरण) 1/1] भवति (भव) व 3/1 अक तं (त) 2/1 स पि (अ)=भी से (त) 6/1 स एगदा (अ)=एक समय दायादा (दायाद) 1/2 विभयंति (विभय) व 3/2 सक अदत्तहारो (अदत्तहार) 1/1 वा (अ)=या से[1] (त) 6/1 स अवहरति (अवहर) व 3/1 सक रायाणो (राय) 1/2 वा (अ)=या से[1] (त) 6/1 स विलुंपंति (विलुंप) व 3/2 सक णस्सति (णस्स) व 3/1 अक से (त) 1/1 सवि विणस्सति (विणस्स) व 3/1 अक से (त) 1/1 सवि अगारदाहेण [(अगार)–(दाह) 3/1] वा (अ)=या डज्झति (डज्झति व कर्म 3/1 सक अनि

इति (अ)=इस प्रकार. से (त) 1/1 सवि परस्स (पर) 4/1 वि अट्ठाए (अट्ठ) 4/1 कूराइं (कूर) 2/2 वि कम्माइं (कम्म) 2/2 बाले (बाल) 1/1 वि पकुव्वमाणे (पकुव्व) वकृ 1/1 तेण (त) 3/1 स दुक्खेण (दुक्ख) 3/1 मूढे (मूढ) भूकृ 1/1 अनि विप्परियासमुवेति [(विप्परियासं+(उवेति)] विप्परियासं (विप्परियास)/21 उवेति (उवे) व 3/1 सक

मुणिणा (मुणि) 3/1 हु (अ)=ही एतं (एत) 1/1 सवि पवेदितं (पवेदित) भूकृ 1/1 अनि

अणोहंतरा (अणोहंतर) 1/2 वि एते (एत) 1/2 सवि णो (अ)= नहीं य (अ)=बिल्कुल ओहं[2] (ओह) 2/1 तरित्तए (तर) हेकृ

1. कभी-कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग द्वितीया विभक्ति के स्थान पर होता है (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)
2. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण :3–137)

अतीरंगमा (अ-तीरंगम) 1/2 वि तीरं (तीर) 2/1 गमित्तए (गम) हेकृ अपारंगमा (अ-पारंगम) 1/2 वि पारं (पार) 2/1 आयाणिज्जं (आया) विधिकृ 1/1 च (अ) = ही आदाय (आदा) संकृ तम्मि (त) 7/1 स ठाणे (ठाण) 7/1 ण (अ) = नहीं चिट्ठति (चिट्ठ) व 3/1 अक वितहं (वितह) 2/1 व पप्प (पप्प) सकृ अनि खेतण्णे[1] (खेतण्ण) 1/1 वि ठाणम्मी (ठाण) 7/1 32764

37 तं = तो। परिगिज्झ = रखकर। दुपयं = मनुष्य (को)। चउप्पयं = पशु को। अभिजुंजियाणं = कार्य में लगाकर। संसिंचियाणं = बढ़ाकर। तिविधेण = तीनों प्रकार के द्वारा। जा = जो। वि = भी। से = उसके। तत्थ = उस अवसर पर। मत्ता = मात्रा। भवति = होती है। अप्पा = अल्प। वा = या। बहुगा = बहुत। से = वह। तत्थ = उसमें। गढिते = आसक्त। चिट्ठति = रहता है। भोयणाए = भोग के लिए। ततो = बाद में। से = उसके लिए। एगदा = एक समय। विप्परिसिट्ठं = बचा हुआ। संभूतं = उपलब्ध। महोवकरणं (मह + उवकरणं) = महान् साधन। भवति = हो जाता है। तं = उसको। पि = भी। से = उसके। एगदा = एक समय। दायादा = उत्तराधिकारी। विभयंति = बांट लेते हैं। अदत्तहारो = चोर। वा = या। सेऽवहरति (से + अवहरति) = उसका अपहरण कर लेता है। रायाणो = राजा। वा = या। से = उसका→उसको।

विलुंपंति = छीन लेते हैं। से = वह। णस्सति = नष्ट हो जाता है। विणस्सति = विनाश हो जाता है। अगारदाहेण = घर के दहन से। डज्झति = जला दिया जाता है।

इति = इस प्रकार। से = वह। परस्सऽट्ठाए (परस्स + अट्ठाए) = दूसरे

---

1 'खेतण्ण का एक अर्थ 'धूर्त' भी होता है। (Monier Williams. Sans. Eng. Dictionary, P. 332)

के प्रयोजन के लिए। कूराइं कम्माइं = क्रूर कर्मों को। बाले = अज्ञानी। पकुव्वमाणे = करता हुआ। तेण = उनके द्वारा। दुक्खेण = दुःख से। मुढे = व्याकुल हुआ। विप्परियसमुवेति (विप्परियासं + उवेति) = विपरीतता को प्राप्त होता है।

मुणिणा = ज्ञानी के द्वारा। हु = ही। एतं = यह। पवेदितं = कहा गया है। अणोहंतरा = पार जाने में असमर्थ। एते = ये। णो = नहीं। य = बिल्कुल। ओहं = संसाररूपी प्रवाह को → संसाररूपी प्रवाह में। तरित्तए = तैरने के लिए। अतीरंगमा = तीर पर जाने वाले नहीं। तीरं = तीर पर। गमित्तए = जाने के लिए। अपारंगमा = पार जाने वाले नहीं। पारं = पार (को)। गमित्तए = जाने के लिए। आयाणिज्जं = ग्रहण किए जाने योग्य को। च = ही। आदाय = ग्रहण करके। तम्मि = उस (पर)। ठाणे = स्थान पर। ण = नहीं। चिट्ठति = ठहरता है। वितहं = असत्य को। पप्प = प्राप्त करके। खेतण्णे = धूर्त। ठाणम्मि = स्थान पर।

38 उद्देसो (उद्देस) 1/1 पासगस्स (पासग) 4/1 वि णत्थि (अ) = नहीं बाले (बाल) 1/1 वि पुण (अ) = और णिहे (णिह) 1/1 वि कामसमणुण्णे [(काम)-(समणुण्ण) 1/1 वि] असमितदुक्खे [(असमित) भूकृ अनि-(दुक्ख)[1] 7/1] दुक्खी (दुक्खि) 1/1 वि दुक्खाणमेव [(दुक्खाणं) + (एव)] दुक्खाणं (दुक्ख) 6/2. एव (अ) = ही आवट्टं[2] (आवट्ट) 2/1 अणुपरियट्टति (अणुपरियट्ट) व 3/1 अक त्ति (अ) = इस प्रकार बेमि (ब्रू) व 1/1 सक

38. उद्देसो = उपदेश। पासगस्स = द्रष्टा के लिए। णत्थि = नहीं है। बाले = अज्ञानी। पुण = और। णिहे = आसक्ति युक्त। कामसमणुण्णे = भोगों

---

1. कभी कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-135)
2. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)

का अनुमोदन करने वाला। असमितदुक्खे = अपरिमित दुःख में→अपरिमित दुःख के कारण। दुक्खी = दुखी। दुक्खाणमेव = (दुक्खाणं एवं) = दुःखों के ही। आवट्टं = भंवर को→भंवर में। अणुपरियट्टति = फिरता रहता है। त्ति = इस प्रकार। बेमि = कहता हूं।

39 आसं (आस) 2/1 च[1] (अ) = और छंदं (छंद) 2/1 विगिंच (विगिंच) विधि 2/1 सक धीरे (धीर) 8/1 तुमं (तुम्ह) 1/1 स चेव (अ) = ही तं (त) 2/1 सवि सल्लमाहट्टु [(सल्लं) + (आहट्टु)] सल्लं (सल्ल) 2/1. आहट्टु (आहट्टु) संकृ अनि जेण (ज) 3/1 स सिया (अ) = होना तेण (त) 3/1 स णो (अ) = नहीं इणमेव [(इणं) + (एव)] इणं (इम) 2/1 सवि. एव (अ = ही णावबुज्झंति [(ण) + (अवबुज्झंति)] ण (अ) = नहीं. अवबुज्झंति (अवबुज्झ) व 3/2 सक जे (ज) 1/2 सवि जणा (जण) 1/2 मोहपाउडा [(मोह)-(पाउड 1/2 वि]

39 आसं = आशा को। च = और। छंदं = इच्छा को। विगिंच = छोड़। धीरे = हे धीर। तुमं = तू। चेव = ही। तं = उस (को)। सल्लमाहट्टु (सल्लं + आहट्टु) = विष को ग्रहण करके। जेण = जिस के कारण। सिया = होता है। तेण = उसके कारण। णो = नहीं। सिया = होता है। इणमेव (इणं + एव) = इसको, ही। णावबुज्झंति (ण + अवबुज्झंति) = नहीं समझते हैं। जे = जो। जणा = मनुष्य। मोहपाउडा = मोह से ढके हुए।

40 उदाहु[2] (उदाहु) भू 3/1 आर्ष वीरे (वीर) 1/1 अप्पमादो (अप्पमाद) 1/1 वि महामोहे, [(महा)-(मोह) 7/1] अलं[3] (अ) = पर्याप्त कुसलस्स (कुसल) 4/1 पमादेणं[4] (पमाद) 3/1] संतिमरणं [(संति)-(मरण) 2/1] सपेहाए (सपेह) संकृ भेउरधम्मं [(भेउर) वि (धम्म)

---

1. 'और' अर्थ को प्रकट करने के लिए कभी-कभी 'च' का प्रयोग दो बार किया जाता है।
2. पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृ. 755
3. संप्रदान के साथ अर्थ होता है, 'पर्याप्त'।
4. 'विना' के योग में तृतीया होती है। यहां 'विना' लुप्त है।

1/1] णालं [(ण+(अलं)] ण=नहीं अलं (अ)=कोई लाभ नहीं पास (पास) विधि 2/1 सक ते (तुम्ह) 4/1 स एतेहिं (एत) 3/2 एतं (एव) 2/1 मुणि (मुणि) 8/1 महब्भयं (महब्भयं) 1/1 णातिवातेज्ज [(ण) + (अतिवातेज्ज)] ण=मत । अतिवातेज्ज[1] प्रेरक
(अतिवत→अतिवात) विधि 2/1 सक कंचणं (अ)=किसी भी तरह ।

40 उदाहु = कहा । वीरे = महावीर ने । अप्पमादो = प्रमादरहित । महामोहे = घोर आसक्ति में । अलं = पर्याप्त । कुसलस्स = कुशल के लिए । पमादेणं = प्रमाद (के विना) । संतिमरणं = शान्ति, मरण को । सपेहाए = देखकर । भेउर धम्मं = नश्वर, स्वभाव को । णालं[(ण) + (अलं)] = नहीं, कोई लाभ नहीं । अलं = कोई लाभ नहीं । ते = तेरे लिए । एतेहिं = इन से । एतं = इस को । पास = सीख । महब्भयं = महाभयंकर । णातिवातेज्ज [(ण) + अतिवातेज्ज)] = मत मार । कंचणं = किसी भी तरह ।

41 एस (एत) 1/1 सवि वीरे (वीर) 1/1 पसंसिते (पसंसित) भूकृ 1/1 अनि जे (ज) 1/1 सवि । ण (अ) = नहीं । णिव्विज्जति (णिव्विज्ज) व 3/1 अक आदाणाए (आदाण→आदाणा) 5/1

41 एस = वह । वीरे = वीर । पसंसित = प्रशंसित । जे = जो । ण = नहीं । णिव्विज्जति = दूर होता है । आदाणाए = संयम से ।

42 लाभो (लाभ) 1/1 त्ति (अ) = शब्दस्वरूपद्योतक ण (अ) = नहीं मज्जेज्जा (मज्ज) विधि 2/1 अक अलाभो (अलाभ) 1/1 सोएज्जा (सोअ) विधि 2/1 अक बहुं (बहु) 2/1 वि पि (अ) = भी लद्धुं (लद्धुं) संकृ अनि णिहे (णिह) 1/1 वि परिग्गहाओ (परिग्गह) 5/1 अप्पाणं (अप्पाणा) 2/1 अवसक्केज्जा (अवसक्क) विधि 2/1 सक अण्णहा (अ) = विपरीत रीति से णं (त) 2/1 स पासए (पासअ) 1/1 वि परिहरेज्जा (परिहर) व 3/1 सक

42 लाभो = लाभ । ण = न । मज्जेज्जा = मद कर । अलाभो = हानि ।

---

1. प्राकृतमार्गोपदेशिका: पृ. 320

ण = मत । सोएज्जा = शोक कर । बहुं = बहुत (को) । पि = भी । लद्धुं = प्राप्त करके । णिहे = आसक्तियुक्त । परिग्गहाओ = परिग्रह से । अप्पाणं = अपने को । अवसक्केज्जा = दूर रख । अण्णहा = विपरीत रीति से । णं = उसको (का) । पासए = द्रष्टा । परिहरेज्जा = परिभोग करता है ।

43 कामा (काम) 1/2 दुरतिक्कमा (दुरतिक्कम) 1/2 वि जीवियं (जीविय) 1/1 दुप्पडिबूहगं (दुप्पडिबूहग) 1/1 वि कामकामी [(काम)-(कामि) 1/1 वि खलु (अ) = ही अयं (इम) 1/1 सवि पुरिसे (पुरिस) 1/1 से (त) 1/1 सवि सोयति (सोय) व 3/1 अक जूरति (जूर) व 3/1 सक तिप्पति (तिप्प) व 3/1 अक पिड्डुति (पिड्डु) व 3/1 अक परितप्पति (परितप्प) व 3/1 अक

43 कामा = इच्छाएँ । दुरतिक्कमा = दुर्जेय । जीवियं = जीवन । दुप्पडिबूहगं = वढ़ाया नहीं जा सकता । कामकामी = इच्छाओं का, इच्छुक । खलु = ही । अयं = यह । पुरिसे = मनुष्य । से = वह । सोयति = शोक करता है । जूरति = क्रोध करता है । तिप्पति = रोता है । पिड्डुति = सताता है । परितप्पति = नुकसान पहुँचाता है ।

44 आयतचक्खू [(आयत) वि—(चक्खु) 1/2] लोगविप्पस्सी [(लोग)—(विपस्सि) 1/1 वि] लोगस्स (लोग) 6/1 अहे (अ) = नीचे भागं (भाग) 2/1 जाणति (जाण) व 3/1 सक उड्ढं (उड्ढ) 2/1 वि तिरियं (तिरिय) 2/1 वि गढिए (गढिअ) 1/1 वि अणुपरियट्टमाणे (अणुपरियट्ट) वक्रु 1/1 संधि (संधि) 2/1 विदित्ता (विदित्ता) संकृ अनि इह (अ) = यहाँ मच्चिएहिं (मच्चिअ) 3/2 एस (एत) 1/1 सवि वीरे (वीर) 1/1 पसंसिते (पसंसित) भूकृ 1/1 अनि जे (ज) 1/1 सवि बद्धे (बद्ध) 2/2 वि पडिमोयए (पडिमोयए) व 3/1 सक अनि

44 आयतचक्खू = विस्तृत, आँखे । लोगविपस्सी = लोक को देखने वाला । लोगस्स = लोक के । अहेभागं = नीचे, भाग को । जाणति = जानता है ।

उड्ढं=ऊपर(को)। भागं=भाग को। तिरियं=तिरछे(को)। गढिए =आसक्त। अणुपरियट्टमाणे=फिरता हुआ। संधि=अवसर को। विदित्ता=जानकर। इह=यहाँ। मच्चिएहिं=मनुष्य के द्वारा। एस= यह (वह)। वीरे=वीर। पसंसिते=प्रशंसित। जे=जो। बद्धे=बँधे हुओं को। पडिमोयए=मुक्त करता है।

45 कासंकसे (कासंकस) 1/1 वि खलु (अ)=सचमुच अयं (इम) 1/1 सवि पुरिसे (पुरिस 1/1 बहुमायी (बहुमायि) 1/1 वि कडेण (अ)=के कारण मूढे (मूढ) 1/1 वि पुणो (अ)=फिर तं (अ)=इसलिए करेति (कर) व 3/1 सक लोभं (लोभ) 2/1 वेरं (वेर) 2/1 वड्ढेति (वड्ढ) व 3/1 सक अप्पणो (अप्प) 4/1

45 कासंकसे=आसक्त। खलु=सचमुच। अयं=यह। पुरिसे=मनुष्य। बहुमायी=अति कपटी। कडेण=के कारण। मूढे=अज्ञानी। पुणो= फिर। तं=इसलिए। करेति=करता है। लोभं=लोलुपता को। वेरं= दुश्मनी (को)। वड्ढेति=बढ़ाता है। अप्पणो=अपने लिए।

46 जे (ज) 1/1 सवि ममाइयमतिं [(ममाइय) वि-(मति) 2/1] जहाति (जहा) व 3/1 सक से (त) 1/1 सवि ममाइतं (ममाइत) 2/1 वि हु (अ)=ही दिट्ठपहे [(दिट्ठ) वि-(पह) 1/1] मुणी (मुणि) 1/1 जस्स (ज) 4/1 स णत्थि (अ)=नहीं है ममाइतं (ममाइत) 1/1 वि

46 जे=जो। ममाइयमतिं=ममतावाली वस्तु बुद्धि को। जहाति=छोड़ता है। से=वह। ममाइतं=ममतावाली वस्तु को। हु=ही। दिट्ठपहे=पथ जाना गया। मुणी=ज्ञानी। जस्स=जिसके लिए। णत्थि=नहीं है।

47 णारतिं [(ण)+(अरतिं)] ण=नहीं अरतिं (अरति) 2/1 सहती[1] (सह) व 3/1 सक वीरे (वीर) 1/1 णो=नहीं रतिं (रति) 2/1 जम्हा

---

1. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'ति' को 'ती' किया गया है।

(अ)=चूंकि अविमणे (अविमण) 1/1 वि तम्हा (अ)=इसलिए रज्जति (रज्ज) व 3/1 अक ।

47 णारतिं [(ण)+(अरतिं)]=नहीं, विकर्षण को। सहती=सहन करता है। वीरे=वीर । णो=नहीं । रतिं=आकर्षण को। जम्हा=चूंकि । अविमणे =खिन्न नहीं । तम्हा=इसलिए । ण=नहीं । रज्जति=खुश होता है ।

48 जे (ज) 1/1 सवि अणण्णदंसी [(अणण्ण) वि–दंसि) 1/1 वि] से (त) 1/1 सवि अणण्णारामे [(अणण्ण)+(आरामे)] [(अणण्ण) वि–(आराम) 7/1]

48 जे=जो । अणण्णदंसी=समतामयी के दर्शन करने वाला । से=वह । अणण्णारामे (अणण्ण+आरामे)=अनुपम, प्रसन्नता में ।

49 उड्ढं (अ)=ऊंची, अहं(अ) नीची तिरियं (अ)=तिरछी दिसासु (दिसा) 7/2 से (त) 1/1 वि सव्वतो (अ)=सब ओर से सव्वपरिण्णाचारी [(सव्व) वि–(परिण्णा)–(चारि) 1/1 वि] ण (अ)=नहीं लिप्पति (लिप्पति) व कर्म 3/1 सक अनि छणपदेण [(छण)–(पद) 3/1 वीरे (वीर) 1/1 वि.

49 उड्ढं=ऊंची । अहं=नीची । तिरियं=तिरछी । दिसासु=दिशाओं में । से=वह । सव्वतो=सब ओर से । सव्वपरिण्णाचारी=पूर्ण जागरूकता से चलने वाला । ण=नहीं । लिप्पति=संलग्न किया जाता है । छणपदेन=हिंसा-स्थान के साथ । वीरे=वीर ।

50 से (त) 1/1 सवि मेधावी (मेधावि) 1/1 वि जे (ज) 1/1 सवि अणुग्घातणस्स (अणुग्घातण) 6/1 खेत्तण्णे (खेत्तण्ण) 1/1 वि जे (ज) 1/1 सवि य (अ)=भी बंधपमोक्खमण्णेसी [(बंध)+(पमोक्खं)+(अण्णेसी] [(बंध)–(पमोक्ख)[1] 2/1] अण्णेसी (अण्णेसि) 1/1 वि

---

1. कभी कभी द्वितीया विभक्ति का प्रयोग सप्तमी विभक्ति के स्थान पर पाया जाता है (हेम प्राकृत व्याकरण : 3–137)

कुसले (कुसल) 1/1 वि पुण (अ)=और णो (अ)=नहीं बद्ध (बद्ध) भूकृ 1/1 अनि मुक्के (मुक्क) भूकृ 1/1 अनि

से (त) 1/1 सवि जं (ज) 2/1 स च (अ)=भी आरभे (आरभ) व 3/1 सक च (अ)=बिल्कुल णारभे [(ण)+(आरभे)] ण (अ)=नहीं. आरभे (आरभ) व 3/1 सक अणारद्धं (अणारद्ध) 2/1 वि च (अ)= बिल्कुल ण (अ)=नहीं आरभे (आरभ) विधि 3/1 सक

50 से=वह। मेधावी=मेधावी। जे=जो। अणुग्घातणस्स=आघात रहितता का। खेतण्णे=जानने वाला। य=भी। बंधपमोक्खमण्णेसी (बंध+ पमोक्खं+अण्णेसी)=बन्धन (कर्म से) छुटकारे को→(कर्म से) छुटकारे के विषय में, खोज करने वाला।

कुसले=कुशल। पुण=और। णो=नहीं। बद्धे=बंधा हुआ। मुक्के= मुक्त किया गया।

से=वह। जं=जिस को। च=भी। आरभे=करता है। च=बिल्कुल णारभे=(ण+आरभे)=नहीं करता है। अणारद्धं=नहीं किए हुए को। च=बिल्कुल। ण=न। आरभे=करे।

51 सुत्ता (सुत्त) भूकृ 1/2 अनि अमुणी (अमुणि) 1/2 वि मुणिणो (मुणि) 1/2 सया (अ)=सदा जागरंति (जागर) व 3/2 अक

51 सुत्ता=सोए हुए। अमुणी=अज्ञानी। मुणिणो—ज्ञानी। सया=सदा। जागरंति=जागते हैं।

52 जस्सिमे [(जस्स)+(इमे)] जस्स[1] (ज) 6/1 इमे (इम) 1/2 सवि सद्दा (सद्द) 1/2 य (अ)=और रूवा (रूव) 1/2 गंधा (गंध) 1/2 रसा (रस) 1/2 फासा(फास)1/2 अभिसमण्णागता (अभिसमण्णागत) 1/2

---

1. कभी कभी षष्ठी का प्रयोग तृतीया के स्थान पर होता है (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

वि भवंति (भव) व 3/2 अक से (त) 1/1 सवि आतवं[1] (आतवन्त→आतवन्तो→आतवं) 1/1 वि णाणवं[1] (णाणवन्त→णाणवन्तो→णाणवं) 1/1 वि वेयवं[1] (वेयवन्त→वेयवन्तो→वेयवं) 1/1 वि धम्मवं[1] (धम्मवन्त→धम्मवन्तो→धम्मवं) 1/1 वि बंभवं[1] (बंभवन्त→बंभवन्तो→बंभवं) 1/1 वि

52 जस्सिमे [(जस्स)+(इमे)] = जिसके→जिसके द्वारा; ये । सद्दा = शब्द । य = और । गंधा = गंध । रसा = रस । फासा = स्पर्श । अभिसमण्णागता = अच्छी तरह जाने गए । भवंति = होते हैं । से = वह । आतवं = आत्मवान् णाणवं = ज्ञानवान् । वेयवं = वेदवान् । धम्मवं = धर्मवान् । बंभवं = ब्रह्मवान् ।

53 पासिय (पास) संकृ आतुरे (आतुर) 2/2 वि पाणे (पाण) 2/2 अप्पमत्तो (अपमत्त) 1/1 वि परिव्वए (परिव्वअ) विधि 2/1 सक मंता (मा[2]) वकृ 1/2 एयं (एय) 2/1 सवि मतिमं (मतिमन्त→मतिमन्तो→मतिमं) 8/1 वि पास (पास) विधि 2/1 सक

आरंभजं (आरंभज) 1/1 वि दुक्खमिणं [(दुक्खं)+(इणं)] दुक्खं (दुक्ख) 1/1. इणं (इम) 1/1 सवि ति (अ) = इस प्रकार णच्चा (णच्चा) संकृ अनि

मायी (मायि) 1/1 वि पमायी (पमायि) 1/1 वि पुणरेति (पुणरेति) व 3/1 सक अनि गब्भं[3] (गब्भ) 2/1

---

1. विकल्प से 'त' का लोप तथा 'न्' का अनुस्वार होने से उपर्युक्त रूप बने । (अभिनव प्राकृत व्याकरण : पृष्ठ 427)
2. 'मा' का एक अर्थ 'सीखना' भी होता है ।
3. 'गमन' अर्थ में द्वितीया का प्रयोग होता है ।

उवेहमाणो (उवेह) वकृ 1/1 सद्द-रूवेसु[1] [(सद्द)-(रूव) 7/2] अंजू (अंजू) 1/1 वि माराभिसंकी [(मार)+(अभिसंकी)] [(मार)-(अभिसंकि) 1/1 वि] मरणा (मरण) 5/1 पमुच्चति (पमुच्चति) व कर्म 3/1 सक अनि

53 पासिय=देखकर। आतुरे=पीड़ित को। पाणे=प्राणियों को। अप्पमत्तो =अप्रमादी। परिव्वए=गमन कर। मंता=सीखते हुए। एयं=इसको। मतिमं=हे बुद्धिमान्। पास=देख। आरंभजं=हिंसा से उत्पन्न होने वाली। दुक्खमिणं [(दुक्खं)+(इणं)]=पीड़ा, यह। ति=इस प्रकार। णच्चा=जानकर। मायी=माया-युक्त। पमायी=प्रमादी। पुणरेति= वार वार आता है। गब्भं=गर्भको→गर्भ में। उवेहमाणो=उपेक्षा करता हुआ। सद्द-रूवेसु=शब्द और रूप में—शब्द और रूप की। अंजू=तत्पर। माराभिसंकी [(मार)+(अभिसंकी)]=मरण (से), डरने वाला। मरणा=मरण से। पमुच्चति=छुटकारा पा जाता है।

54 अप्पमत्तो (अप्पमत्त) 1/1 वि कामेहिं[2] (काम) 3/2 उवरतो (उवरत) भूकृ 1/1 अनि पावकम्मेहिं[3] [(पाव)-(कम्म) 3/2] वीरे (वीर) 1/1 वि आतगुत्ते [(आत)-(गुत्त) 1/1 वि] खेयण्णे (खेयण्ण) 1/1 वि जे (ज) 1/1 सवि पज्जवजातसत्थस्स [(पज्जव)-(जात)-(सत्थ) 6/1] खेतण्णे (खेतण्ण) 1/1 वि से (त) 1/1 सवि असत्थस्स (असत्थ) 6/1

54 अप्पमत्तो=मूर्च्छा रहित। कामेहिं=इच्छाओं द्वारा।—→इच्छाओं में।

---

1. कभी कभी द्वितीया के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग होता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3–137)
2. कभी कभी सप्तमी के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3–137)
3. कभी कभी पंचमी के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3–136)

उवरतो = मुक्त । पावकम्मेहिं = पाप कर्मों द्वारा→पाप कर्मों से । वीरे = वीर । आतगुत्ते = आत्मरक्षित । खेयण्णे = जानने वाला । जे = जो । पज्जवजातसत्थस्स = पर्यायों से उत्पन्न शस्त्र का । खेतण्णे = जानने वाला । से = वह । असत्थस्स = अशस्त्र का । खेतण्णे = जानने वाला ।

55 अकम्मस्स (अकम्म) 4/1 वि ववहारो (ववहार) 1/1 ण (अ) = नहीं विज्जति (विज्ज) व 3/1 अक
कम्मुणा (कम्म) 3/1 उवाधि (उवाधि) मूल शब्द 1/1 जायति (जाय) व 3/1 अक

55 अकम्मस्स = कर्मों से रहित के लिए । ववहारो = सामान्य लोक प्रचलित आचरण । ण = नहीं । विज्जति = होता है । कम्मुणा = कर्मों से । उवाधि = उपाधि । जायति = उत्पन्न होती है ।

56 कम्मं (कम्म) 2/1 च (अ) = ही पडिलेहाए (पडिलेह) संकृ कम्ममूलं [(कम्म)-(मूल) 1/1] च (अ) = तथा जं (ज) 1/1 सवि छणं (छण) 1/1 पडिलेहिय (पडिलेह) संकृ सव्वं (सव्व) 2/1 वि समायाय (समाया) संकृ दोहिं (दो) 3/2 वि अंतेहिं (अंत) 3/2 अदिस्समाणे (अदिस्समाणे) वकृ कर्म 1/1 अनि

56 कम्मं—कर्म को । च = ही । पडिलेहाए = देखकर । कम्ममूलं = कर्म का आधार । च = तथा । जं = जो । छणं = हिंसा । पडिलेहिय = देखकर । सव्वं = पूर्ण को । समायाय = ग्रहण करके । दोहिं = दोनों के द्वारा । अंतेहिं = अंतों के द्वारा । अदिस्समाणे = नहीं कहा जाता हुआ ।

57 अग्गं (अग्ग) 2/1 च[1] (अ) = और मूलं (मूल) 2/1 विगिंच (विगिंच) विधि 2/1 सक धीरे (धीर) 8/1 पलिछिंदियाणं (पलिछिंद) संकृ णिक्कम्मदंसी [(णिक्कम्म) वि-(दंसि) 1/1 वि]

---

1. कभी कभी और अर्थ को प्रकट करने के लिए 'च' का दो बार प्रयोग किया जाता है ।

57 अग्गं = प्रतिफल को। च = और। मूलं = आधार को। विगिंच = निर्णय कर। धीरे = हे धीर। पलिछिंदियाणं = छेदन करके। णिक्कम्मदंसी = कर्मोरहित का देखने वाला।

58 लोगंसि (लोग) 7/1 परमदंशी [(परम)-(दंसि) 1/1 वि] विवित्तजीवी [(विवित्त) वि-(जीवि) 1/1 वि] उवसंते (उवसंत) 1/1 वि समिते (समित) 1/1 वि सहिते (सहित) 1/1 वि सदा (अ) = सदा जते (जत) 1/1 वि कालकंखी [(काल)-(कंखि) 1/1 वि] परिव्वए (परिव्वअ) व 3/1 तक

58 लोगंसि = लोक में। परमदंसी = परम तत्व को देखने वाला। विवित्तजीवी = विवेक-युक्त जीने वाला। उवसंते = तनाव-मुक्त। समिते = समतावान्। सहिते = कल्याण करने वाला। सदा = सदा। जिते = जितेन्द्रिय। कालकंखी = उचित समय को चाहने वाला। परिव्वए = गमन करता है।

59 सच्चंसि (सच्च) 7/1 धितिं (धिति) 2/1 कुव्वह (कुव्व) विधि 2/2 सक एत्थोवरए [(एत्थ) + (उवरए)] एत्थ (एत) 7/1. उवरए (उवरअ) भूकृ 1/1 अनि मेहावी (मेहावि) 1/1 वि सव्वं (सव्व) 2/1 वि पावं (पाव) 2/1 वि कम्मं (कम्म) 2/1 झोसेति (झोस) व 3/1 सक

59 सच्चंसि = सत्य में। धितिं = धारणा (को)। कुव्वह = करो। एत्थोवरए [(एत्थ) + (उवरए)] यहाँ पर, ठहरा हुआ। मेहावी = मेधावी। सव्वं = सब। पावं = पाप को। कम्मं = कर्म को। झोसेति = क्षीण कर देता है।

60 अणेगचित्ते [(अणेग)-(चित्त) 2/2] खलु (अ) = सचमुच अयं (इम) 1/1 सवि पुरिसे (पुरिस) 1/1 से (त) 1/1 सवि केयणं (केयण) 2/1 अरिहइ (अरिह[1]) व 3/1 सक पूरइत्तए (पूर) हेकृ.

60 अणेगचित्ते = अनेक चित्तों को। खलु = सचमुच। अयं = यह।

---

1. 'अरिह' के साथ हेकृ या कर्म का प्रयोग होता है।

पुरिसे = मनुष्य। से = वह। केयणं = चलनी को। अरिहइ = दावा करता है। पूरइत्तए = भरने के लिए।

61 णिस्सारं (णिस्सार) 2/1 वि पासिय (पास) संक्र णाणी (णाणि) 8/1 उववायं (उववाय) 2/1 चवणं (चवण) 2/1 णच्चा (णच्चा) संक्र अनि. अणण्णं (अणण्ण) 2/1 वि चर (चर) विधि 2/1 सक माहणे (माहण) 8/1. से (त) 1/1 सवि ण (अ) = न छणे (छण) व 3/1 सक छणावए (छणाव) प्रे. व 3/1 सक छणंतं (छण) वकृ 2/1 णाणुजाणति [(ण) + (अणुजाणति)] ण (अ) = न. अणुजाणति (अणुजाण) व 3/1 सक.

61 णिस्सारं = निस्सार को। पासिय = देखकर। णाणी = हे ज्ञानी। उववायं = जन्म को। चवणं = मरण को। णच्चा = जानकर। अणण्णं = समता को। चर = आचरण कर। माहणे = हे अहिंसक! से = वह। ण = न। छणे = हिंसा करता है। छणावए = हिंसा कराता है। छणंतं = हिंसा करते हुए को। णाणुजाणति [(ण) + (अणुजाणति)] न अनुमोदन करता है।

62 कोधादिमाणं [(कोध) + (आदि) + (माणं)] [(कोध)-(आदि)-(माण) 2/1] हणिया (हण) संक्र य (अ) = सर्वथा वीरे (वीर) 1/1 वि लोभस्स[1] (लोभ) 6/1 पासे (पास) व 3/1 सक णिरयं (णिरय) 2/1 महंतं (महंत) 2/1 वि तम्हा (अ) = इसलिए हि (अ) = ही विरते (विरत) भूकृ 1/1 अनि वधातो (वध) 5/1 छिंदिज्ज[2] (छिंद) व 3/1 सक सोतं (सोत) 2/1 लहुभूयगामी [(लहु)-(भूय) संकृ-(गामि) 1/1 वि]

---

1. कभी कभी द्वितीया विभिक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण (3-134)
2. पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 680

62 कोधादिमाणं = क्रोधादि (को) तथा अहंकार को । हणिया = नष्ट करके । य = (अ) = सर्वथा । वीरे = वीर । लोभस्स = लोभ का→लोभ को । पासे = देखता है । णिरयं = नरक मय को। महंतं = प्रचण्ड को । तम्हा = इसलिए । हि = ही । वीरे = वीर । विरते = मुक्त हुआ । वधातो = हिंसा को । छिंदिज्ज = नष्ट कर देता है । सोतं = प्रवाह को । लहुभूयगामी = हलका होकर, गमन करने वाला ।

63 गंथं (गंथ) 2/1 परिण्णाय (परिण्णा) संकृ इहऽज्ज [(इह) + (अज्ज)] इह (अ) = यहाँ, अज्ज (अ) = आज वीरे (वीर) 1/1 वि सोयं (सोय) 2/1 चरेज्ज (चर) विधि 3/1 सक दते (दंत) 1/1 वि उम्मुग्ग (उम्मुग्ग) मूलशब्द 6/1 लद्धुं (लद्धुं) संकृ अनि इह (अ) = यहां माणवेहिं (माणव) 3/2 णो (अ) = मत पाणिणं[1] (पाणि) 6/2. पाणे (पाण) 2/2 समारभेज्जासि (समारभ) व 2/1 सक

63 गंथं = परिग्रह को । परिण्णाय = जानकर । इहऽज्ज = यहाँ, आज । वीरे = वीर । सोयं = प्रवाह को । परिण्णाय = जानकर । चरेज्ज = व्यवहार करे । दंते = आत्म नियन्त्रित । उम्मुग्ग = बाहर निकलने के । लद्धुं = प्राप्त करके । इह = यहाँ । माणवेहिं = मनुष्य होने के कारण । णो = मत । पाणिणं = प्राणियों के । पाणे = प्राणों की । समारभेज्जासि = हिंसा कर ।

64 समयं (समय) 2/1 तत्थुवेहाए [(तत्थ) + (उवेहाए) तत्थ (अ) = वहां. उवेहाए (उवेह) संकृ अप्पाणं (अप्पाण) 2/1 विप्पसादए (वि-प्पसाद) विधि 3/1 सक अणण्णपरमं [(अणण्ण) + (परमं)] [(अणण्ण)-(परम)[2]

1. प्राकृत में विभक्ति जुड़ते समय दीर्घ स्वर बहुधा पद्य में ह्रस्व हो जाते हैं । (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 182)
2. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है । (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)

2/1] णाणी (णाणि) 1/1 वि णो (अ)= न पमादे (पमाद) विधि 3/1 अक कयाइ (अ) कभी वि (अ)=भी आतगुत्ते [(आत)-(गुत्त) 1/1 वि] सदा (अ)=सदा वीरे (वीर) 1/1 वि जातामाताए [(जाता)-

स्त्री
मात—→ (माता) 4/1 वि] जावए (जाव) विधि 3/1 सक विरागं (विराग) 2/1 रूवेहिं[1] (रूव) 3/2 गच्छेज्जा (गच्छ) विधि 3/1 सक महता (महता) 3/1 वि अनि. खुड्डएहिं[1] (खुड्डअ) 3/2 वि वा (अ)= और आगतिं (आगति) 2/1 गतिं (गति) 2/1 परिण्णाय (परिण्णा) संकृ दोहिं (दो) 3/2 वि वि (अ)=ही अंतेहिं (अंत) 3/2 अदिस्समाणेहिं (अ-दिस्समाण) वकृ कर्म 3/2 अनि. से (त) 1/1 सवि ण (अ)=न. छिज्जति (छिज्जति) व कर्म 3/1 सक अनि भिज्जति (भिज्जति) व कर्म 3/1 सक अनि डज्झति (डज्झति) व कर्म 3/1 सक अनि हम्मति (हम्मति) व कर्म 3/1 सक अनि कंचणं (अ)=थोड़ा सा सव्वलोए [(सव्व)-(लोअ) 7/1]

64 समयं=समता को। तत्थुवेहाए [(तत्थ)+उवेहाए)] वहाँ, धारण करके। अप्पाणं=स्वयं को विप्पसादए=प्रसन्न करे। अणण्णपरमं=अद्वितीय, परम को → परम के प्रति। णाणी=ज्ञानी। णो=न। पमादे=प्रमाद करे। कयाइ=कभी। वि=भी। आतगुत्ते=आत्मा से, संयुक्त। सदा= सदा। वीरे=वीर। जातामाताए=यात्रा के लिए। जावए=शरीर का प्रतिपालन करे। विरागं=विरक्ति को। रूवेहिं=रूपों से। गच्छेज्जा= करे। महता=बड़े से। खुड्डएहिं=छोटे से। वा=और। आगतिं= आने को। गतिं=जाने को। परिण्णाय=जानकर। दोहिं=दोनों द्वारा। वि=ही। अंतेहिं=अन्तों द्वारा। अदिस्समाणेहिं=समझा जाता हुआ

---

1. कभी कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-136)

नहीं होने के कारण। से=वह। ण=न। छिज्जति=छेदा जाता है। भिज्जति=भेदा जाता है। डज्झति=जलाया जाता है। हम्मति=मारा जाता है। कंचणं=थोड़ा सा। सव्वलोए=कहीं भी, लोक में।

65 अवरेण[1] (अवर) 3/1 पुव्वं (पुव्व) 2/1 वि ण (अ)=नहीं सरंति (सर) व 3/2 सक एगे (एग) 1/2 सवि किमस्स [(किं)+(अस्स)] किं (किं) 1/1 स. अस्स (इम) 6/1 स (अ)[2] तीतं (तीत) 1/1 वि किं (किं) 1/1 स वाऽऽगमिस्सं [(वा)+(आगमिस्सं)] वा (अ)=और. आगमिस्सं (आगमिस्स) 1/1 वि भासंति (भास) व 3/2 सक इह (अ)= यहाँ माणवा (माणव) 1/2 तु (अ)=किन्तु जमस्स [(जं)+(अस्स)] जं (ज) 1/1 सवि. अस्स (इम) 6/1 स तं (त) 1/1 सवि आगमिस्सं (आगमिस्स) 1/1 वि णातीतमट्ठं [(ण)+(अतीतं)+(अट्ठं)] ण (अ)=नहीं. अतीतं (अतीत) 2/1 वि. अट्ठं (अट्ठ) 2/1 य (अ)= तथा णियच्छिन्ति (णियच्छ) व 3/2 सक तथागता (तथागत) 1/2 उ (अ)=इसके विपरीत विधूतकप्पे [(विधूत) वि-(कप्प)[3] 7/1] एताणुपस्सी [(एत)+(अणुपस्सी)] एत (अ)=अब. अणुपस्सी (अणुपस्सि) 1/1 वि णिज्झोसइत्ता (णिज्झोसइत्तु) 1/1 वि

65 अवरेण=भविष्य के (साथ-साथ)। पुव्वं=पूर्वगामी को। ण=नहीं। सरंति=लाते हैं। एगे=कुछ लोग। किमस्स=[(किं)+(अस्स)] क्या, इसका। तीतं=अतीत को। किं=क्या? वाऽऽगमिस्सं [(वा)+(आगमिस्सं)] और, भविष्य। भासंति=कहते हैं। एगे=कुछ मनुष्य। इह= यहाँ। माणवा=मनुष्य। तु=किंतु। जमस्स[(जं)+(अस्स)] जो,

---

1. 'सह' के योग में तृतीया होती है।
2. 'अ' का लोप (हेम प्राकृत व्याकरण : 1-66)
3. कभी कभी तृतीया के स्थान पर सप्तमी होती है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-135)

इसका । तीतं = अतीत । तं = वह । आगमिस्सं = भविष्य । णातीतमट्ठं [(ण) + (अतीतं) + (अट्ठं)] = न, अतीत को, प्रयोजन को । य = तथा । आगमिस्सं = भविष्य को । अट्ठं = प्रयोजन को । णियच्छंति = देखते हैं । तथागता = वीतराग उ = इसके विपरीत । विधूतकप्पे = सम्यक् स्पृष्ट आचरण के द्वारा । एताणुपस्सी [(एत) + (अणुपस्सी)] अब का, देखने वाला । णिज्झोसइत्ता = कर्मों का नाश करने वाला ।

66 पुरिसा (पुरिस) 8/1 तुममेव [(तुमं) + (एव)] तुमं (तुम्ह) 1/1 स. एव (अ) = ही तुमं (तुम्ह) 6/1 स मित्तं (मित्त) 1/1 किं (अ) = क्यों बहिया (अ) = बाहर की ओर मित्तमिच्छसि [(मित्तं) + (इच्छसि)] मित्तं (मित्त) 2/1. इच्छसि (इच्छ) व 2/1 सक जं (ज) 2/1 सवि जाणेज्जा (जाण) विधि 2/1 सक उच्चालयित्तं [(उच्च) + (आलयितं)] [(उच्च) वि-(आलयित)] भूकृ 2/1 अनि] तं (त) 2/1 सवि दूरालयितं [(दूर) + आलयितं)] [(दूर) वि-(आलयित) भूकृ 2/1 अनि] दूरालइतं [(दूर) + (आलइतं)] [(दूर) वि-(आलइत) भूकृ 2/1 अनि]

66 पुरिसा ! = हे मनुष्य ! तुममेव [(तुमं) + एव)] = तू, ही । तुमं = तेरा । मित्तं = मित्र । किं = क्यों । बहिया = बाहर की ओर । मित्तमिच्छसि [(मित्तं) + (इच्छसि)] = मित्र को, तलाश करता है । जं = जिसे । जाणेज्जा = जानो । उच्चालयितं [(उच्च) + (आलयितं)] = ऊँचे (में) जमा हुआ (को) । तं = उसे । दूरालयितं = [(दूर) + (आलयितं)] = दूरी पर, जमा हुआ । दूरालइतं [(दूर) + (आलइतं)] = दूरी पर, जमा हुआ ।

67 पुरिसा (पुरिस) 8/1 अत्ताणमेव [(अत्ताणं) + (एव)] अत्ताणं (अत्ताण) 2/1. एव (अ) = ही अभिणिगिज्झ (अभिणिगिज्झ) संकृ अनि एवं (अ) = इस प्रकार दुक्खा (दुक्ख) 5/1 पमोक्खसि (पमोक्खसि) भवि 2/1 अक आर्ष

67 पुरिसा ! = हे मनुष्य ! अत्ताणमेव [(अत्ताणं) + (एव)] = मन को, ही। अभिणिगिज्झ = रोक कर। एवं = इस प्रकार। दुक्खा = दुःख से। पमोक्खसि = छूट जायेगा।

68 पुरिसा (पुरिस) 8/1 सच्चमेव [(सच्चं) + (एव)] सच्चं (सच्च) 2/1. एव (अ) = ही समभिजाणाहि (समभिजाण) विधि 2/1 सक सच्चस्स (सच्च) 6/1 आणाए (आणा) 7/1 से (त) 1/1 सवि उवट्ठिए (उवट्ठिअ) 1/1 वि मेधावी (मेधावि) 1/1 वि मारं (मार) 2/1 तरति (तर) व 3/1 सक. सहिते (सहित) 1/1 वि धम्ममादाय [(धम्मं) + (आदाय)] धम्मं (धम्म) 2/1. आदाय (आदा) संकृ सेयं (सेय) 2/1 वि समणुपस्सति (समणुपस्स) व 3/1 सक दुक्खमत्ताए [(दुक्ख)-(मत्ता) 3/1] पुट्ठो (पुट्ठ) भूकृ 1/1 अनि णो (अ) = नहीं झंझाए (झंझा) 7/1

68 पुरिसा ! = हे मनुष्य ! सच्चमेव [(सच्चं) + (एव)] = सत्य को, ही। समभिजाणाहि = निर्णय कर। सच्चस्स = सत्य की। आणाए = आज्ञा में। से = वह। उवट्ठिए = उपस्थित। मेधावी = मेधावी। मारं = मृत्यु को। तरति = जीत लेता है। सहिते = सुन्दर चित्तवाला। धम्ममादाय [(धम्मं) + (आदाय)] = धर्म को, ग्रहण करके। सेयं = श्रेष्ठतम को। समणुपस्सति = भली-भाँति देखता है। सहिते = सुन्दर चित्तवाला। दुक्खमत्ताए = दुःख की मात्रा से। पुट्ठो = ग्रस्त। णो = नहीं। झंझाए = व्याकुलता में।

69 जे (ज) 1/1 सवि एगं (एग) 2/1 सवि जाणति (जाण) व 3/1 सक से (त) 1/1 सवि सव्वं (सव्व) 2/1 वि

सव्वतो (अ) = सब ओर से पमत्तस्स (पमत्त) 4/1 वि भयं (भय) 1/1 अप्पमत्तस्स (अप्पमत्त) 4/1 वि णत्थि (अ) = नहीं

एग (एग) मूल शब्द 2/1 णामे (णाम) व 3/1 सक से (त) 1/1 सवि

वहु (वहु) मूल शब्द 2/1 दुक्खं (दुक्ख) 2/1 लोगस्स (लोग) 6/1 जाणित्ता (जाण) संकृ वंता (वंता) संकृ अनि. लोगस्स[1] (लोग) 6/1 संजोगं (संजोग) 2/1 जंति[2] (जा) व 3/2 सक वीरा (वीर) 1/2 वि महाजाणं (महाजाण) 2/1 परेण[3] (क्रिविअ) = आगे से परं[3] (क्रिविअ) = आगे को णावकंखंति [(ण) + (अवकंखंति)] ण (अ) = नहीं. अवकंखंति (अवकंख) व 3/2 सक जीवितं (जीवित) 2/1 एगं (एग) 2/1 सवि विगिंचमाणे (विगिंच) वकृ 1/1 पुढो (अ) = एक एक करके विगिंचइ (विगिंच) व 3/1 सक सड्ढी (सड्ढि) 1/1 वि आणाए (आण) 7/1 मेधावी (मेधावि) 1/1 वि लोगं (लोग) 2/1 च (अ) = ही आणाए (आणा) 3/1 अभिसमेच्चा (अभिसमेच्चा) संकृ अनि. अकुतोभयं (अकुतो-भय) 1/1 वि अत्थि (अ) = होता है सत्यं (सत्य) 1/1 परेण[3] (अ) = तेज से. परं (पर) 1/1 वि णत्थि (अ) = नहीं होता है असत्थं (असत्य) 1/1

69 जे = जो । एगं = अनुपम को । जाणति = जानता है । से = वह । सव्वं = सब को । सव्वतो = सब ओर से या किसी ओर से । पमत्तस्स = प्रमादी के लिए । भयं = भय । अप्पमत्तस्स = अप्रमादी के लिए । णत्थि = नहीं । एगणामे = एक (को), झुकाता है । वहुणामे = वहुत (को), झुकाता है । दुक्खं = दुःख को । लोगस्स = प्राणी-समूह के । जाणित्ता = जानकर । वंता = वाहर निकाल कर । लोगस्स = संसार का—संसार के प्रति । संजोगं = ममत्व को । जंति = चलते हैं । वीरा = वीर । महाजाणं = महा-

---

1. कभी कभी सप्तमी के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है । (हेम प्राकृत व्याकरण : 3–134)
2. जा—जान्ति—जन्ति (हेम प्राकृत व्याकरण : 1–84)
3. कर्म, करण और अधिकरण के एक वचन के 'पर' शब्द के रूप क्रिया विशेषण की भांति प्रयोग किए जाते हैं ।

पथ को—महापथ पर। परेण = आगे से। परं = आगे को। जंति = चलते जाते हैं। णावकंखंति [(ण)+(अवकंखंति)] = नहीं, चाहते हैं। जीवितं = जीवन को। एगं = केवल मात्र को। विगिंचमाणे = दूर हटाता हुआ। पुढो = एक एक करके। विगिंचइ = दूर हटा देता है। सड्ढी = श्रद्धा रखने वाला। आणाए = आज्ञा में। मेधावी = शुद्धबुद्धि वाला। लोगं = प्राणी-समूह को। च = ही। आणाए = आज्ञा से। अभिसमेच्चा = जानकर। अकुतोभयं = निर्भय। अत्थि = होता है। सत्थं = शस्त्र। परेण = तेज से। परं = तेज। णत्थि = नहीं होता है। असत्थं = अशस्त्र।

70 जे (ज) 1/1 सवि कोहदंसी [(कोह)-(दंसि) 1/1 वि] से (त) 1/1 सवि। माणदंसी [(माण)-(दंसि) 1/1 वि]। मायदंसी [(माय)-(दंसि) 1/1 वि] लोभदंसी [(लोभ)-(दंसि) 1/1 वि] पेज्जदंसी [(पेज्ज)—(दंसि) 1/1 वि] दोसदंसी [(दोस)—(दंसि) 1/1 वि] मोहदंसी [(मोह)—(दंसि) 1/1 वि] दुक्खदंसी [(दुक्ख)—(दंसि) 1/1 वि]

70 जे = जो। कोहदंसी = क्रोध को समझने वाला। से = वह। माणदंसी = अहंकार को समझने वाला। मायदंसी = मायाचार को समझने वाला। लोभदंसी = लोभ को समझने वाला। पेज्जदंसी = राग को समझने वाला। दोसदंसी = द्वेष को समझने वाला। मोहदंसी = आसक्ति को समझने वाला। दुक्खदसी = दुःख को समझने वाला।

71 किमत्थि [(किं)+(अत्थि) किं (अ) = क्या. अत्थि (अ) = है उवधी (उवधि) 1/1 पासगस्स (पासग) 6/1 ण (अ) = नहीं विज्जति (विज्ज) व 3/1 अक णत्थि (अ) = नहीं है त्ति (अ) = इस प्रकार बेमि (बू) व 1/1 सक.

71 किमत्थि [(किं)+(अत्थि)] क्या ?, है। उवधी = नाम। पासगस्स = द्रष्टा का। ण = नहीं। विज्जति = है। णत्थि = नहीं है। त्ति = इस प्रकार। बेमि = कहता हूँ।

72 सव्वे (सव्व) 1/2 वि पाणा (पाण) 1/2 भूता (भूत) 1/2 जीवा (जीव) 1/2 सत्ता (सत्त) 1/2 ण (अ) = नहीं हंतव्वा (हंतव्वा) विधि कृ 1/2 अनि अज्जावेतव्वा (अज्जाव) विधि कृ 1/2 परिघेत्तव्वा (परिघेत्तव्वा) विधि कृ 1/2 अनि परितावेयव्वा (परिताव) विधि कृ 1/2 उद्दवेयव्वा (उद्दव) विधि कृ 1/2

एस (एत) 1/1 सवि धम्मे (धम्म) 1/1 सुद्धे (सुद्ध) 1/1 वि णितिए (णितिअ) 1/1 वि सासए (सासअ) 1/1 वि समेच्च (समेच्च) संकृ अनि लोयं (लोय) 2/1 खेतण्णेहिं (खेतण्ण) 3/2 पवेदिते (पवेदित) भूकृ 1/1 अनि

72 सव्वे = कोई भी। पाणा = प्राणी । भूता = जन्तु । जीवा = जीव । सत्ता = प्राणवान् । ण = नहीं । हंतव्वा = मारा जाना चाहिए । अज्जावे-तव्वा = शासित किया जाना चाहिए । परिघेत्तव्वा = गुलाम बनाया जाना चाहिए । परितावेयव्वा = सताया जाना चाहिए । उद्दवेयव्वा = अशान्त किया जाना चाहिए । एस = यह । धम्मे = धर्म । सुद्धे = शुद्ध । णितिय = नित्य । सासए = शाश्वत । समेच्च = जानकर । लोयं = जीव-समूह को । खेतण्णेहिं = कुशल द्वारा । पवेदिते = कथित ।

73 णो (अ) = न लोगस्सेसणं [(लोगस्स) + (एसणं)] लोगस्स[1] (लोग) 6/1 एसणं (एसणा) 2/1 चरे (चर) विधि 3/1 सक

73 णो = न । लोगस्सेसणं [(लोगस्स) + एसणं)] लोक के—लोक के द्वारा, इच्छा को । चरे = करे ।

74 णाऽणागमो [(णा) + (अणागमो)] णा (अ) = नहीं. अणागमो (अणागम) 1/1 मच्चुमुहस्स[1] [(मच्चु)—(मुह) 6/1] अत्थि (अ) = है. इच्छापणीता

---

1. कभी कभी सप्तमी के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3–134)

[(इच्छा)—(पणीत) भूकृ 1/2 अनि) वंकाणिकेया [वंक→(वंका[1])—(णिकेय 1/2] कालग्गहीता [(काल)-(ग्गहीत) भूकृ 1/2 अनि] णिचये (णिचय) 7/1 णिविट्ठा (णिविट्ठ) 1/2 वि पुढो पुढो (अ)=अलग अलग जाइं (जाइ) 2/1 पकप्पेंति (पकप्प) व 3/2 सक

74 णाऽणागमो[(णा)+(अणागमो)] नहीं, न आना। मच्चुमुहस्स=मृत्यु (के) मुख का—मुख में। अत्थि=है। इच्छापणीता=इच्छाओं द्वारा, उपस्थित। वंकाणिकेया=कुटिल, घर। कालग्गहीता=मृत्यु (के द्वारा) पकड़े हुए। णिचये=संग्रह में। णिविट्ठा=आसक्त। पुढो पुढो- अलग अलग। जाइं=जन्म को। पकप्पेंति=धारण करते हैं।

75 उवेहेणं [(उवेह)+(इणं)] उवेह (उवेह) विधि 2/1 सक इणं[2] (इम) 2/1 सवि वहिता (अ)=बाहर य (अ)=और लोकं[3] (लोक) 2/1 से (त) 1/1 सवि सव्व लोकंसि [(सव्व)-(लोक 7/1] जे (ज) 1/1 सवि केइ (अ)=कोई विण्णु (विण्णु) 1/1 वि अणुबियि=अणुविइ (अ)=बड़ी सावधानी से पास (पास) विधि2/1 सक णिक्खित्तदंडा [(णिक्खित्त) भूकृ अनि=(दंडा) 1/2] जे (ज) 1/1 सवि केइ (अ)= कोइ सत्ता (सत्त) 1/2 पलियं (पलिय) 2/1 चयंति (चय) व 3/2 सक णरा (णर) 1/2 मुतच्चा [(मुत)=(अच्चा)] [(मुत भूकृ अनि—अच्चा) 1/2] धम्मविदु [(धम्म)=(विदु) मूलशब्द 1/2 वि त्ति (अ)=और अंजू (अंजू) 1/2 वि आरंभजं (आरंभज 1/1 वि दुक्खमिण

---

1. समासगत शब्दों में रहे हुए स्वर परस्पर में ह्रस्व के स्थान पर दीर्घ और दीर्घ के स्थान पर ह्रस्व हो जाते हैं। (हेम प्राकृत व्याकरण: 1-4)

2-3. कभी कभी सप्तमी के स्थान पर द्विवतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)

[(दुक्खं)+(इणं)] दुक्खं (दुक्ख) 1/1 इणं (इम) 2/1 सवि वि (अ) = इस प्रकार णच्चा (णच्चा) संकृ अनि एवमाहु [(एवं)+(आहु)] एवं (अ) = ऐसा आहु (आहु) भू 3/1 आर्ष सम्मत्तदंसिणो (सम्मत्तदंसि) 1/2 ते (त) 1/2 सवि सव्वे (सव्व) 1/2 सवि पावादिया (पावादिय) 1/2 वि दुक्खस्स (दुक्ख 6/1 कुसला (कुसल) 1/2 परिण्णमुदाहरंति [(परिण्णं)+(उदाहरंति)] परिण्णं (परिण्णा) 2/1 उदाहरंति (उदाहर) व 3/2 सक इति (अ) = इस प्रकार कम्मं (कम्म) 2/1 परिण्णाय (परिण्णा) संकृ सव्वसो (अ) + सव्वसो

75 उवेहेणं [(उवेह)+(इणं) = समझ, इसको – इस में। बहिता = बाहर। य = ठीक। लोकं = लोक को – लोक में। से = वह। सव्वलोकंसि = समस्त, लोक में। जे = जो। केइ = कोई। विण्णू = बुद्धिमान्। अणुवियि = बड़ी सावधानी से। पास = समझ। णिक्खित्तदंडा = छोड़ दी गई, हिंसा। जे = जो। केइ = कोई। सत्ता = प्राणी। पलियं = कर्म-समूह को। चयंति = दूर हटाते हैं।

णरा = मनुष्य। मुतच्चा [(मुत)+(अच्चा)] समाप्त हुई, चित्तवृत्तियाँ। धम्मविदु = अध्यात्म, जानकार। त्ति = और। अंजू = सरल। आरंभजं = हिंसा से उत्पन्न। दुक्खमिणं [(दुक्खं)+(इणं)] दुःख, इस को। वि = इस प्रकार। णच्चा = जानकर। एवमाहु [(एवं)+(आहु)] ऐसा, कहा। सम्मत्तदंसिणो = समत्व दर्शियों ने। ते = वे। सव्वे = सभी। पावादिया = व्याख्याता। दुक्खस्स = दुःख के। कुसला = कुशल। परिण्णमुदाहरंति [(परिण्णं)+(उदाहरंति)] = ज्ञान को, कथन करते हैं। इति = इस प्रकार। कम्मं = कर्म-समूह को। परिण्णाय = जानकर। सव्वसो = सब प्रकार से।

76 इह (अ) = यहाँ आणाकंखी [(आणा)-(कंखि) 8/1 वि] पंडिते (पंडित) 8/1 वि अणिहे (अणिह) 1/1 वि एगमप्पाणं [(एग)+(अप्पाणं)]

एगं (एग) 2/1 वि. अप्पाणं (अप्पाण) 2/1 सपेहाए (संपेह→संपेह[1]) संकृ धुणे (धुण) विधि 2/1 सक सरीरं (सरीर) 2/1 कसेहि (कस) विधि 2/1 सक जरेहि (जर) विधि 2/1 अक अप्पाणं[2] (अप्पाण) 2/1 जहा (अ)=जैसे जुन्नाइं (जुन्न) 2/1 वि कट्ठाइं (कट्ठ) 2/2 हव्ववाहो (हव्ववाह) 1/1 पमत्थति (पमत्थ) व 3/1 सक एवं (अ)=इसी प्रकार अत्तसमाहित [(अत्त)-(समाहित) 1/1 वि] अणिहे (अणिह) 1/1 वि.

76 इह=यहाँ। आणाकंखी=हे आज्ञा का इच्छुक। पंडिते=बुद्धिमान्। अणिहे=अनासक्त। एगमप्पाणं [(एगं)+(अप्पाणं)]=अनुपम को, आत्मा को। सपेहाए=देखकर। धुणे=दूर हटा। सरीरं=शरीर को। कसेहि=नियन्त्रित कर। अप्पाणं=अपने को। जरेहि=घुल जा। अप्पाणं=आत्मा में। जहा=जैसे। जुन्नाइं=जीर्ण को। कट्ठाइं=लकड़ियों को। हव्ववाहो=अग्नि। पमत्थति=नष्ट कर देती है। एवं=इसी प्रकार। अत्तसमाहिते=आत्मा (में), लीन। अणिहे=अनासक्त।

77 विगिंच=(विगिंच) विधि 2/1 सक कोहं (कोह) 2/1 अविकंपमाणे (अविकंप) वकृ 1/1 इमं (इम) 2/1 सवि निरुद्धाउयं [(निरूद्ध)+(आउयं)] [(निरुद्ध) भूकृ अनि-(आउय) 1/1] सपेहाए (सपेहा) संकृ. दुक्खं (दुक्ख) 2/1 च (अ)=और जाण (जाण) विधि 2/1 सक अदुवाऽऽगमेस्सं [(अदुवा)+(आगमेस्सं)] अदुवा=अथवा आगमेस्सं (आगमेस्स) 2/1 वि पुढो (अ)=विभिन्न फासाइं (फास) 2/2 च (अ) =तथा फासे (फास) व 3/1 सक लोयं (लोय) 2/1 च (अ)-और पास (पास) विधि 2/1 सक विप्फंदमाणं (विप्फंद) वकृ 2/1 जे (ज)

---

1. स=सं।
2. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)

1/2 सवि णिव्वुडा (णिव्वुड) मूक्त 1/2 अनि पवेहिं[1] (पाव) 3/2 कम्मेहिं[1] (कम्म) 3/2 अणिदाणा (अणिदाण) 1/2 वि ते (त) 1/2 सवि वियाहिता (वियाहित) मूकृ 1/2 अनि तम्हाऽतिविज्जो [(तम्हा) + (अतिविज्जो)] तम्हा = इसलिए अतिविज्जो (अतिविज्ज) 1/1 वि णो = मत पडिसंजलेज्जासि[2] (पडिसंजल) विधि 2/1 सक त्ति (अ) = इस प्रकार बेमि (बू) व 1/1 सक

77 विगिंच = छोड़। कोहं = क्रोध को। अविकंपमाणो = निश्चल रहता हुआ। इमं = इस को। निरुद्धाउयं [(निरुद्ध) + (आउयं)] सीमित, आयु। सपेहाए = समझकर। दुक्खं = दुःख को। च = और। जाण = जान। अदुवाऽऽगमेस्सं [(अदुवा) + (आगमेस्सं)] अथवा, आगामी को। पुढो = विभिन्न। फासाइं = दुःखों को। च = तथा। फासे = प्राप्त करता है। लोयं = लोक को। च = और। पास = देख। विप्फंदमाण = तड़फते हुए। जे = जो। णिव्वुडा = मुक्त। पावेहिं = पापों द्वारा→पापों से। कम्मेहिं = कर्मों द्वारा→कर्मों से। अणिदाणा = निदानरहित। ते = वे। वियाहिता = कहे गये। तम्हाऽतिविज्जो [(तम्हा) + (अतिविज्जो)] इसलिए, महान ज्ञानी। णो = मत। पडिसंजलेज्जासि = उत्तेजित कर। त्ति = इस प्रकार। बेमि = कहता हूँ।

78 णेत्तेहिं[3] (णेत्त) 3/2 पलिछिण्णेहिं (पलिछिण्ण) मूकृ 3/2 अनि आताणसोतगढिते [(आताण[4])-(सोत)-(गढित) 1/1 वि] वाले (वाल) 1/1 वि अव्वोच्छिण्णबंधणे [(अव्वोछिन्न) वि-(बंधण) 1/1] अणभिक्कंतसंजोए [(अणभिक्कंत) वि-(संजोअ) 1/1] तमंसि (तम) 7/1

---

1. कभी कभी पंचमी के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-136)
2. पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण : पृ. 681.
3. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)
4. यहाँ 'आयाण' पाठ होना चाहिए।

अविजाणओ (अविजाणअ) 1/1 वि आणाए (आणा) 6/1 लंभो (लंभ) 1/1 णत्थि (अ) = नहीं त्ति (अ) = इस प्रकार बेमि (बू) व 1/1 सक.

78 णेत्तेहिं = नेत्रों के द्वारा→नेत्रों के होने पर। पलिछिण्णेहिं = परिसीमित। आताणसोतगढिते = इन्द्रियों (के), प्रवाह (में), आसक्त। बाले = अज्ञानी। अव्वोच्छिण्णबंधणे = विना टूटे हुए, कर्म बन्धन। अणभिक्कंतसंजोए = बिना नष्ट हुए, संयोग। तमंसि = अन्धकार के प्रति। अविजाणओ = अनजान। आणाए = उपदेश का। लंभो = लाभ। णत्थि = नहीं। त्ति = इस प्रकार। बेमि = कहता हूँ।

79 जस्स (ज) 6/1 स णत्थि (अ) = विद्यमान नहीं पुरे (अ) = पूर्व में पच्छा (अ) = बाद में मज्झे (मज्झ) 7/1 तस्स (त) 6/1 स कुओ (अ) = कहाँ से? सिया[1] (सिया) विधि 3/1 अक अनि. से (त) 1/1 सवि हु (अ) = ही पन्नाणमंते (पन्नाणमंत) 1/1 वि बुद्धे (बुद्ध) 1/1 आरंभोवरए [(आरंभ)+(उवरए)] [(आरंभ)-(उवरअ) भूकृ 1/1 अनि] सम्ममेतं [(सम्मं)+(एवं)] सम्मं (सम्म) 1/1 वि एतं (एत) 2/1 स ति = इस प्रकार पासहा[2] (पास) विधि 2/2 सक जेण (अ) = जिसके कारण बंधं (बंधं) 2/1 वहं[3] (वह) 2/1 घोरं (घोर) 2/1 वि परितावं (परिताव) 2/1 च (अ) = और दारुणं[3] (दारुण) 2/1 पलिछिंदिय (पलिछिंद) संकृ बाहिरंगं (बाहिरंग) 2/1 वि च (अ) = और सोतं (सोत) 2/1 णिक्कम्मदंसी [(णिक्कम्भ)-(दंसि) 1/1 वि] इह = यहाँ मच्चिएहिं[4] (मच्चिअ) 3/2 कम्मुणा (कम्म) 3/1 सफलं

---

1. पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण : पृष्ठ 685
2. पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण : पृष्ठ 136
3. कभी कभी सप्तमी के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3–137)
4. कभी कभी सप्तमी के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3–137)

[(स)-(फल) 2/1] दट्ठुं (दट्ठुं) संक्र ततो (अ) इसलिए णिज्जाति[1] (णी) व 3/1 सक वेदवी (वेदवि) 1/1 वि ।

79 जस्स = जिसके । णत्थि = विद्यमान नहीं । पुरे = पूर्व में । पच्छा = बाद में । मज्झे = मध्य में । तस्स = उसके । कुओ = कहाँ से ? सिया = हो→होगी । से = वह । हु = ही । पन्नाणमंते = प्रज्ञावान् । बुद्धे = बुद्ध । आरंभोवरए [(आरंभ)+(उवरए)] हिंसा से, विरक्त । सम्ममेतं [(सम्मं+(एतं)] = सत्य, यह । जेण = जिसके कारण । बंधं = कर्म-बंधन को । वहं = हत्या को→हत्या में । घोरं = घोर (को) । परितावं = दुःख को । च = और । पलिछिंदिय = हटा कर । बाहिरगं = बाहर की ओर । च = ही । सोतं = ज्ञानेन्द्रिय-समूह को । णिक्कम्मदंसी = निष्कर्म को अनुभव करने वाला । इह = यहाँ । मच्चिएहिं = मनुष्यों में से । कम्मुणा = कर्म के साथ । सफलं = फल को । दट्ठुं = देखकर । ततो = इसलिए । णिज्जाति = दूर ले जाता है । वेदवी = समझदार ।

80 जे (ज) 1/2 सवि खलु (अ) = निश्चय ही भो = अरे ! वीरा (वीर) 1/2 समिता (समित) 1/2 वि सहिता (सहित) 1/2 वि सदा (अ) = सदा जता (जत) भूक्र 1/2 अनि संथडदंसिणो [(संथड)-(दंसि) 1/2 वि] आतोवरता [(आत)+(उवरता)] अहातहा (अ) = उचित प्रकार से लोगं (लोग) 2/1 उवेहमाणा (उवेह) वक्र 1/2 पाईणं (पाईण) 2/1 पडीणं (पडीण) 2/1 दाहिणं (दाहिण) 2/1 उदीणं (उदीण) 2/1 इति = अत : सच्चंसि (सच्च) 7/1 परिविचिट्ठिंसु (परिविचिट्ठ) भू 3/2 आर्ष

80 जे = जो । खलु = निश्चय ही । भो = अरे ! वीरा = वीर । समिता = रागादिरहित । सहिता = हितकारी । सदा = सदा । जता = जितेन्द्रिय । संथडदंसिणो = गहरी अनुभूतिवाले । आतोवरता = शरीर से विरत ।

---

1. हेम प्राकृत व्याकरण : 3-158

अहातहा=उचित प्रकार से । लोगं = लोक को ।उवेहमाणा = जानते हुए । पाईणं=पूर्व दिशा को→पूर्व दिशा में । पडीणं=पश्चिम दिशा को→पश्चिम दिशा में । दाहिणं=दक्षिण दिशा को→दक्षिण दिशा में । उदीणं=उत्तर दिशा को→उत्तर दिशा में । इति=अतः । सच्चंसि (सच्च) 7/1 परिविचिट्ठिंसु=स्थित हुए ।

81 गुरू (गुरु) 1/1 वि से (त) 6/1 स कामा (काम) 1/2 ततो (अ) = इसलिए से (त) 1/1 सवि मारस्स (मार) 6/1 अंतो (अंत) 1/1 वि जतो (अ)=चूंकि से (त) 1/1 सवि दूरे (अ)=दूर

81 गुरू=तीव्र । से=उसकी । कामा=इच्छाएँ । ततो=इसलिए । से= वह । मारस्स=अनिष्ट, अहित । अंतो=समीप । जतो=चूंकि । से=वह । मारस्स=अनिष्ट, अहित । अंतो=समीप । ततो=इसलिए । से=वह । दूरे=दूर ।

82 णेव=नहीं से (त) 1/1 वि अंतो (अंत) 1/1 वि दूरे (अ)=दूर से(त) 1/1 वि पासति (पास) व 3/1 सक फुसितमिव [(फुसितं)+(इव)] फुसितं (फुसित) 1/1 इव (अ)=की तरह कुसग्गे [(कुस)+(अग्गे)] [(कुस)—(अग्ग) 7/1] पणुण्णं[1] (पणुण्ण) भूकृ 1/1 अनि णिवतितं (णिवतित) भूकृ 1/1 अनि वातेरितं[2] [(वात)+(ईरितं)] [(वात+ (ईरित)भूकृ 1/1 अनि)] एवं (अ)=इस प्रकार बालस्स[3] (बाल) 6/1 वि जीवितं (जीवित) 1/1 मंदस्स[1] (मंद 6/1 वि अविजाणतो (अवि- जाण) पंचमी अर्थक 'तो' प्रत्यय ।

82 णेव=नहीं । से=वह । अंतो=समीप णेव=नहीं । से=वह । दूरे= दूर । से=वह । पासति=देखता है । फुसितमिव [(फुसित)+(इव)] = जल-बिन्दु, की तरह । कुसग्गे [(कुस)+(अग्गे)]=कुश के, नोक पर ।

1. पणुण्ण=(पणुन्न) भूकृ ।
2. 'गमन' अर्थ में द्वितीया होती है ।
3. कभी कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग तृतीया विभक्ति के स्थान पर होता है । (हेम प्राकृत व्याकरणः 3-134)

पणुण्णं = मिटाए हुए । णिवतितं = नीचे गिरते हुए । वातेरितं [(वात)+ ईरितं)] = वायु द्वारा, हिलते हुए । एवं = इस प्रकार । बालस्स = मूर्ख के →मूर्ख के द्वारा । जीवितं = जीवन । मंदस्स = अज्ञानी का →अज्ञानी के द्वारा । अविजाणतो = नहीं जानने से ।

83 संसयं (संसय) 2/1 परिजाणतो (परिजाण) पंचमी अर्थक 'तो' प्रत्यय संसारे (संसार) 1/1 परिण्णाते (परिण्णात) भूकृ 1/1 अनि भवति (भव) व 3/1 अक अपरिजाणतो (अपरिजाण) पंचमी अर्थक 'तो' प्रत्यय अपरिण्णाते (अपरिण्णात) भूकृ 1/1 अनि

83 संसयं = संशय को । परिजाणतो = समझने से । संसारे = संसार । परिण्णाते = जाना हुआ । भवति = होता है । अपरिजाणतो = नहीं समझने से । अपरिण्णाते = जाना हुआ नहीं ।

84 उट्ठिते (उट्ठित) भूकृ 1/1 अनि. णो (अ) = नहीं पमादए (पमाद) व) 3/1 अक

84 उट्ठिते = प्रगति किया हुआ । णो = नहीं । पमादए = प्रमाद करता है ।

85 से (अ) = वाक्य की शोभा पुव्वं (अ) = पहले पेतं (पेत) भूकृ 1/1 अनि पच्छा (अ) = बाद में भेउरधम्मं [(भेउर) वि-(धम्म) 1/1] विद्धंसणधम्मं [(विद्धंसण)-(धम्म) 1/1] अधुवं (अधुव) 1/1 वि अणितियं (अणितिय) 1/1 वि असासतं (असासत) 1/1 वि चयोवचइयं [(चय)+(ओवचइय)] [(चय)-(ओवचइए→अवचइय) 1/1 वि] विप्परिणामधम्मं [(विप्परिणाम)-(धम्म) 1/1] पासह (पास) विधि 2/2 सक एयं (एय) 2/1 सवि रूवसंधि [(रूव)-(संधि) 2/1].

85 से = वाक्य की शोभा । पुव्वं = पहले । पेतं = छूटा । पच्छा = बाद में । भेउरधम्मं = नश्वर, स्वभाव । विद्धंसणधम्मं = विनाश, स्वभाव । अधुवं = अध्रुव । अणितिय = अनित्य । असासतं = अशाश्वत । चयोवचइयं

[(चय) + (ओवचइयं)] = वढने वाला, क्षम वाला। विप्परिणामधम्मं = परिणमन, स्वभाव। पासह = देखो। एयं = इसको। रूवसंधि = देह-संगम को।

स्त्री
86 आवंती[1] केआवंती (आवंत→आवंती केआवंत→केआवंती) 1/2 वि लोगंसि (लोग) 7/1 परिग्गहावेती (परिग्गहावंत→परिग्गहावंती) 1/2 वि से (त) 1/1 सवि अप्पं (अप्प) 2/1 वि वा (अ)=या वहुं (वहु) 2/1 वि अणुं (अणु) 2/1 वि थूलं (थूल) 2/1 वि चित्तमंतं (चित्तमंत) 2/1 वि अचित्तमंतं (अचित्तमंत) 2/1 वि एतेसु (एत) 7/2 चेव (अ) =ही परिग्गहावंती (परिग्गहावंत→परिग्गहावंती) 1/1 वि एतदेवेगेसिं [(एतदेव)+(एगेसिं)] एतदेव (अ)=इसलिए ही एगेसिं[2] (एग) 6/2 महब्भयं (महब्भय) 1/1 भवति (भव) व 3/1 अक लोगवित्तं [(लोग) -(वित्त) 2/1] च (अ)=ही णं (अ)=वाक्यालंकार उवेहाए (उवेह) संकृ एते (एत) 2/2 सवि संगे (संग) 2/2 अविजाणतो (अविजाण) पंचमी अर्थक 'तो' प्रत्यय।

86 आवंती केआवंती = जितने। लोगंसि = लोक में। परिग्गहावंती = परिग्रह-युक्त। से = वह। अप्पं = थोडी (को)। वा = या। वहुं = वहुत (को)। अणुं = छोटी (को)। थूलं = वड़ी (को)। चित्तमंतं = सजीव (को)। अचित्तमंतं = निर्जीव (को)। एतेसु = इनमें ही। चेव = ही। परिग्गहावंती = ममता-युक्त। एतदेवेगेसिं = [(एतदेव)+एगेसिं)] इसलिए ही, कई में। महब्भयं = महाभय। भवति = उत्पन्न होता है।

स्त्री
1. जावंत→आवंत→अवंती।
2. कभी कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग सप्तमी के स्थान पर किया जाता है : (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

लोगवित्तं=लोक आचरण को। च=ही। उवेहाए=देखकर। एते= इन। संगे=आसक्तियों को। अविजाणतो=नहीं जानने से।

87 से (अ)=वाक्य की शोभा सुतं (सुत) भूकृ 1/1 अनि. च (अ)= और मे (अम्ह) 3/1 स अज्झत्थं (अज्झत्थ) 1/1. बंधपमोक्खो [(बंध)—(पमोक्ख) 1/1] तुज्झऽज्झत्थेव [(तुज्झ) + (अज्झत्थ) + (एव)] तुज्झ (तुम्ह) 6/1 स. अज्झत्थ (अज्झत्थ) मूलशब्द 7/1. एव (अ)=ही.

87 से=वाक्य की शोभा। सुतं=सुना गया। मे मेरे द्वारा। च=और। अज्झत्थं=आत्म-संबंधी। बंध पमोक्खो=बंध, मोक्ष। तुज्झऽज्झत्थेव [(तुज्झ)+(अज्झत्थ)+(एव)] तेरे, मन में, ही।

88 समियाए (समिया) 7/1 धम्मे (धम्म) 1/1 आरिएहिं (आरिअ) 3/2 पवेदिते (पवेदित) भूकृ 1/1 अनि.

88 समियाए=समता में। धम्मे=धर्म। आरिएहिं=तीर्थंकरों द्वारा। पवेदिते=कहा गया।

89 इमेण[1] (इम) 3/1 चेव (अ)=ही जुज्झाहि (जुज्झ) विधि 2/1 अक किं (किं) 1/1 से ते (तुम्ह) 4/1 स. जुज्झेण (जुज्झ) 3/1 बज्झतो (अ)=बाहर से जुद्धारिहं [(जुद्ध)+(अरिहं)] [(जुद्ध)-(अरिह) 1/1 वि] खलु (अ)=निश्चय ही दुल्लभं (दुल्लभ) 1/1 वि

89 इमेण=इसके साथ। चेव=ही। जुज्झाहि=युद्ध कर। किं=क्या लाभ ? ते=तुम्हारे लिए। जुज्झेण=युद्ध करने से। बज्झतो= बाहर से। जुद्धारिहं [(जुद्ध)+(अरिहं)] युद्ध करने के, योग्य। खलु= निश्चय ही। दुल्लभं=दुर्लभ।

---

1. 'सह' के योग में तृतीया होती है।

90 जं (ज) 1/1 सवि सम्मं (सम्म) 1/1 ति (अ)=इस प्रकार पासहा[1] (पास) विधि 2/2 सक तं (त) 1/1 सवि मोणं[2] (मोण) 2/1 ति (अ)=अतः

जं (ज) 1/1 सवि मोणं (मोण) 2/1 ति (अ)=इस प्रकार तं (त) 1/1 सवि सम्मं[3] (सम्म) 2/1 ति (अ)=अतः

90 जं=जो। सम्मं=समता। ति=इस प्रकार। पासहा=जानो। तं=वह। मोणं=मौन को→मौन में। ति=अतः। पासहा=समझो। जं=जो। मोणं=मौन को—मौन में। ति=इस प्रकार। पासहा=जानो। तं=वह। सम्मं=समता को—समता में। ति=अतः। पासहा=समझो।

91 उण्णतमाणे [(उण्णत[4])-(माण) 7/1] य (अ)=ही णरे (णर) 1/1 महता (महता) 3/1 वि अनि मोहेण (मोह) 3/1 मुज्झति (मुज्झ) व 3/1 अक

91 उण्णतमाणे=उत्थान का, अहंकार होने पर। य=ही। णरे=मनुष्य। महता=तीव्र। मोहेण=मोह के कारण। मुज्झति=मूढ बन जाता है।

92 वितिगिंछसमावन्नेणं [(वितिगिंछा)-(समावन्न) 3/1 वि] अप्पाणेणं[5]

---

1. क्रिया के आज्ञाकारक रूप में अन्तिम 'अ' को दीर्घ किया जाता है। (पिशल: प्रा. भा. व्या. पृष्ठ, 136)
2. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण: 3-137)
3. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण: 3-137)
4. यहाँ 'उण्णत' शब्द संज्ञा है। विभिन्न कोश देखें।
5. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3-137)

(अप्पाण) 3/1 णो (अ) = नहीं लभति (लभ) व 3/1 सक समाधि (समाधि) 2/1

92 वितिगिंछ समावन्नेणं = सन्देह के कारण, ग्रहण किए हुए। अप्पाणेणं = मन के द्वारा → मन में। णो = नहीं। लभति = प्राप्त नहीं कर पाता है। समाधि = समाधि को।

93 से (अ) = वाक्य की शोभा उट्ठितस्स (उट्ठित) भूकृ 6/1 अनि ठितस्स (ठित) भूकृ 6/1 अनि गतिं (गति) 2/1 समणुपासह (समणुपास) विधि 2/2 सक एत्थ (अ) = यहाँ वि (अ) = बिल्कुल बालभावे [(बाल)-(भाव) 7/1] अप्पाणं (अप्पाण) 2/1 णो (अ) = मत उवदंसेज्जा (उवदंस) विधि 2/1 सक

93 से = वाक्य की शोभा। उट्ठितस्स = प्रगति किए हुए की। ठितस्स = दृढता पूर्वक लगे हुए की। गतिं = अवस्था को। समणुपासह = देखो। एत्थ = यहाँ। वि = बिल्कुल। बालभावे = मूर्च्छित, अवस्था में। अप्पाणं = अपने को। णो = मत। उवदंसेज्जा = दिखलाओ।

94 तुमं (तुम्ह) 1/1 स सि (अस) व 2/1 अक णाम (अ) = निस्सन्देह तं (त) 1/1 सवि चेव (अ) = ही जं (ज) 2/1 स हंतव्वं (हंतव्वं) विधिकृ 1/1 अनि ति (अ) = देख! मण्णसि (मण्ण) व 2/1 सक अज्जावेतव्वं (अज्जाव) विधिकृ 1/1 परितावेतव्वं (परिताव) विधिकृ 1/1 परिघेतव्वं (परिघेतव्वं) विधिकृ 1/1 अनि उद्दवेतव्वं (उद्दव) विधिकृ 1/1

अंजू (अंजु) 1/1 वि चेयं (अ) = ही पडिबुद्धजीवी [(पडिबुद्ध) वि-(जीवि) 1/1 वि] तम्हा (अ) = इसलिए ण (अ) = न हंता (हंतु) 1/1 वि (अ) = ही घातए (घात) व 3/1 सक अणुसंवेयणमप्पाणेणं [(अणुसंवेयणं) + (अप्पाणेणं)] अणुसंवेयणं (अणुसंवेयण) 1/1. अप्पाणेणं (अप्पाण) 3/1 जं (ज) 2/1 स हंतव्वं (हंतव्वं) विधिकृ 1/1 अनि

णाभिपत्थए [(ण)+(अभिपत्थए) ण (अ)=नहीं. अभिपत्थए (अभिपत्थ) विधि 2/1 सक

94 तुमं=तू। सि=है। णाम=निस्सन्देह। चेव=ही। तं=वह। जं=जिसको। हंतव्वं=मारे जाने योग्य। ति=देख। मण्णसि=मानता है। अज्जावेतव्वं=शासित किए जाने योग्य। परितावेतव्वं=सताए जाने योग्य। परिघेतव्वं=गुलाम बनाए जाने योग्य। उद्दवेतव्वं=अशान्त किए जाने योग्य। अंजू=सरल। चेयं=ही। पडिबुद्धजीवी=जागरूक (होकर) जीने वाला। तम्हा=इसलिए। ण=न। हंता=हिंसा करने वाला। वि=ही। घातए=दूसरों से हिंसा करवाता है। अणुसंवेयणमप्पाणेणं [(अणुसंवेयणं)+अप्पाणेणं)] भोगना, अपने द्वारा। जं=जिसको। हंतव्वं=मारे जाने योग्य। णाभिपत्थए=[(ण)+(अभिपत्थए)]=मत, इच्छा कर

95 जे (ज) 1/1 सवि आता (आत) 1/1 से (त) 1/1 सवि विण्णाता (विण्णातु) 1/1 वि जेण (ज) 3/1 स विजाणति (विजाण) व 3/1 सक तं (त) 2/1 स पडुच्च (अ)=आधार बनाकर पडिसंखाए (पडिसंखा) व 3/1 सक एस (एत) 1/1 सवि आतावादी (आतावादि) 1/1 वि समियाए (समिया) 6/1 परियाए (परियाअ) 1/1 वियाहिते (वियाहित) भूकृ 1/1 अनि त्ति (अ)=इस प्रकार बेमि (बू) व 1/1 सक

95 जे=जो। आता=आत्मा। से=वह। विण्णाता=जानने वाला। जेण=जिससे। विजाणति=जानता है। तं=उसको। पडुच्च=आधार बनाकर। पडिसंखाए=व्यवहार करता है। एस=यह। आतावादी=आत्मवादी। समियाए=समता का। परियाए=रूपान्तरण। वियाहिते=कहा गया। त्ति=इस प्रकार। बेमि=कहता हूँ।

96 आणाणाए (अणाणा) 7/1 एगे (एग) 1/2 सवि सोवट्ठाणा [(स)+

(उवट्ठाणा)] [(स) वि-(उवट्ठाण) 1/2] आणाए (आणा) 7/1 णिरुवट्ठाणा (णिरुवट्ठाण) 1/2 वि एतं (एत) 1/1 सवि ते (तुम्ह) 4/1 स मा (अ) = न होतु (हो) विधि 3/1 अक

96 अणाणाए = अनाज्ञा में। एगे = कुछ लोग। सोवट्ठाणा = तत्परता सहित। आणाए = आज्ञा में। णिरुवट्ठाणा = आलसी। एतं = यह। ते = तुम्हारे लिए। मा = न। होतु = होवे।

97 सव्वे (सव्व) 1/2 वि सरा (सर) 1/2 नियट्टंति (नियट्ट) व 3/2 अक तक्का (तक्क→तक्का) 1/1 तत्थ (ज) 7/1 स ण (अ) = नहीं विज्जति (विज्ज) व 3/1 अक मती (मति) 1/1 तत्थ (त) 7/1 स ण (अ) = नहीं गाहिया (गाहिया) 1/1 ओए (ओअ) 1/1 अप्पतिट्ठाणस्स[1] (अप्पतिट्ठाण) 6/1 खेत्तण्णे (खेत्तण्ण) 1/1 वि

से (त) 1/1 सवि ण (अ) = नहीं दीहे (दीह) 1/1 वि हुस्से (हुस्स) 1/1 वि वट्टे (वट्ठ) 1/1 वि तंसे (तंस) 1/1 वि चउरंसे (चउरंस) 1/1 वि परिमंडले (परिमंडल) 1/1 वि किण्हे (किण्ह) 1/1 वि णीले (णील) 1/1 वि लोहिते (लोहित) 1/1 वि हालिद्दे (हालिद्द) 1/1 वि सुक्किले (सुक्किल) 1/1 वि सुरभिगंधे (सुरभिगंध) 1/1 वि दुरभिगंधे (दुरभिगंध) 1/1 वि तित्ते (तित्त) 1/1 वि कडुए (कडुअ) 1/1 वि कसाए (कसाअ) 1/1 वि अंबिले (अंबिल) 1/1 वि महुरे (महुर) 1/1 वि कक्खडे (कक्खड) 1/1 वि मउए (मउअ) 1/1 वि गरुए (गरुअ) 1/1 वि लहुए (लहुअ) 1/1 वि सीए (सीअ) 1/1 वि उण्हे (उण्ड) 1/1 वि णिद्धे (णिद्ध) 1/1 वि लुक्खे (लुक्ख) 1/1 वि काऊ (काउ) 1/1 वि रुहे (रुह) 1/1 वि संगे (संग) 1/1 इत्थी (इत्थि) 1/1 पुरिसे (पुरिस) 1/1 अण्णहा (अ) = इसके विपरीत

---

1. कभी कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग सप्तमी विभक्ति के स्थान पर पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

परिण्णे (परिण्ण) 1/1 वि सण्णे (सण्ण) 1/1 वि उवमा (उवमा) 1/1 विज्जति (विज्ज) व 3/1 अक अरूवी (अरूवि) 1/1 वि सत्ता (सत्ता) 1/1 अपदस्स (अपद) 4/1 वि पदं (पद) 1/1 णत्थि (अ) = न सद्दे (सद्द) 1/1 रूवे (रूव) 1/1 गंधे (गंध) 1/1 रसे (रस) 1/1 फासे (फास) 1/1 इच्चेतावंति (इच्चेतावंति) 2/2 वि अनि त्ति (अ) = इस प्रकार बेमि (बू) व 1/1 सक.

97 सव्वे=सब । सरा = शब्द । नियट्टंति=लौट आते हैं । तक्का = तर्क । जत्थ=जिसके विषय में । ण = नहीं । विज्जति = होता है । मती = बुद्धि । तत्थ=उसके विषय में । ण=नहीं । गाहिया=पकड़ने वाली । ओए=आभा । अप्पतिट्ठाणस्स = किसी ठिकाने पर नहीं । खेतण्णे = ज्ञाता-द्रष्टा ।

से = वह । ण = न । दीहे = बडी हस्से । हस्से = छोटी । वट्टे = गोल । तंसे = त्रिकोण । चउरंसे=चतुष्कोण । परिमण्डले = परिमण्डल । किण्हे = काली । णीले = नीली । लोहिते = लाल । हालिद्द = पीली । सुक्किले = सफेद । सुरभिगंधे=सुगन्धमयी । दुरभिगंधे = दुर्गन्धमयी । तित्ते = तीखी । कडुए = कडुवी । कसाए = कषैली । अंबिले = खट्टी । महुरे = मीठी । कक्खडे = कठोर । मउए = कोमल । गरुए = भारी । लहुए = हलकी । सीए = ठण्डी । उण्हे = गर्म । णिद्धे = चिकनी । लुक्खे = रूखी । काऊ = लेश्यावान् । रुहे = उत्पन्न होने वाली । संगे = आसक्ति । इत्थी=स्त्री । पुरिसे = पुरुष । अण्णहा = इसके विपरीत (नपुंसक) । परिण्णे=ज्ञाता । सण्णे = अमूर्च्छित । उवमा=तुलना । विज्जति = है । अरूवी = अमूर्तिक । सत्ता = सत्ता । अपदस्स = पदातीत के लिए । पदं = नाम । णत्थि=नहीं । ण=न । सद्दे = शब्द । रूवे = रूप । गंधे = गंध । रसे = रस । फासे = स्पर्श । इच्चेतावंति=बस इतने ही को । त्ति = इस प्रकार । बेमि=कहता हूँ ।

98 संति (अस) व 3/2 अक पाणा (पाण) 1/2 अंधा (अंध) 1/2 वि तमंसि (तम) 7/1 वियाहिता (वियाहित) भूकृ 1/2 अनि. पाणा (पाण) 1/2 पाणे (पाण) 2/2 किलेसंति (किलेस) व 3/2 सक बहुदुक्खा [(बहु)-(दुक्ख) 1/2 वि] हु (अ) = निस्सन्देह जंतवो (जंतु) 1/2 सत्ता (सत्त) 1/2 वि कामेहि[1] (काम) 3/2 माणवा (माणव) 1/2 अबलेण[1] (अबल) 3/1 वि वहं (वह) 2/1 गच्छंति (गच्छ) व 3/2 सक सरीरेण[1] (सरीर) 3/1 पभंगुरेण[1] (पभगुर) 3/1 वि

98. संति = रहते हैं। पाणा = प्राणी। अन्धा = अन्धे। तमंसि = अन्धकार में। वियाहिता = कहे गए। पाणे = प्राणियों को। किलेसंति = दुःख देते हैं। बहुदुक्खा = बहुत दुःखी। हु = निस्सन्देह। जंतवो = प्राणी। सत्ता = आसक्त। कामेहिं = इच्छाओं द्वारा→इच्छाओं में। माणवा = मनुष्य। अबलेण = निर्बल। वहं = हिंसा। गच्छंति = करते हैं। सरीरेण = शरीर के द्वारा→शरीर के होने पर। पभंगुरेण = अत्यन्त नाशवान्।

99 आणाए[2] (आणा) 7/1 मामगं (मामग) 1/1 वि या मामगं (मामग) 2/1 वि धम्मं (धम्म) 1/1 या धम्मं (धम्म) 2/1

99. आणाए = आज्ञा में या आज्ञा को। मामगं = मेरा या मेरे (को)। धम्मं = कर्तव्य या धर्म को।

100 जहा (अ) = जैसे से (अ) = वाक्य की शोभा दीवे (दीव) 1/1 असंदीणे (असंदीण) 1/1 वि एवं (अ) = इस प्रकार धम्मे (धम्म) 1/1 आरियपदेसिए [(आरिय)-(पदेसिअ) भूकृ 1/1 अनि]

---

1. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण: 3-137)
2. (द्वितीय अर्थ में) सप्तमी का प्रयोग द्वितीया विभक्ति के स्थान पर किया गया है। (हेम प्राकृत व्याकरण: 3-137)

100 जहा = जैसे । से = वाक्य की शोभा । दीवे = द्वीप । असंदीणे = असंदीन (पानी में न डूबा हुआ) । एवं = इसी प्रकार । धम्मे = धर्म । आरिय-पदेसिए = समतादर्शी द्वारा प्रतिपादित ।

101 दयं (दया) 2/1 लोगस्स (लोग) 6/1 जाणित्ता (जाण) संकृ पाईणं[1] (पाईण) 2/1 पडीणं (पडीणा) 2/1 दाहिणं[1] (दाहिण) 2/1 उदीणं (उदीण) 2/1 आइक्खे (आइक्ख) विधि 3/1 सक विभए (विभअ) विधि 3/1 सक किट्टे (किट्ट) विधि 3/1 सक वेदवी (वेदवि) 1/1 वि

101 दयं = दया को । लोगस्स = जीव-समूह की । जाणित्ता = समझकर । पाईणं = पूर्व दिशा को→पूर्व दिशा में । पडीणं = पश्चिम दिशा को—पश्चिम दिशा में । दाहिणं = दक्षिण दिशा को→दक्षिण दिशा में । उदीणं = उत्तर दिशा को→उत्तर दिशा में । आइक्खे = उपदेश दे । विभए = वितरित करे । किट्टे = प्रशंसा करे । वेदवी = ज्ञानी ।

102 गामे (गाम) 7/1 अदुवा (अ) = अथवा रण्णे (रण्ण) 7/1 णेव (अ) = न ही धम्ममायाणह [(धम्मं) + (आयाणह)] धम्मं (धम्म) 2/1. आयाणह (आयाण) विधि 2/2 सक पवेदितं (पवेदितं) भूकृ 2/1 अनि माहणेण (माहण) 3/1 वि मतिमया (मतिमया) 3/1 अनि

102 गामे = गाँव में । अदुवा = अथवा । रण्णे = जंगल में । णेव = न ही । धम्ममायाणह = [(धम्मं) + (आयाणह)] धर्म को, समझो । पवेदितं = प्रतिपादित । माहणेण = अहिंसक के द्वारा । मतिमया = प्रज्ञावान् (के द्वारा) ।

103 अहासुतं (अ) = जैसा कि सुना है. वदिस्सामि (वद) भवि 1/1 सक. जहा (अ) = प्रत्यक्ष उक्ति के आरम्भ करते समय प्रयुक्त से (त) 1/1

---

1. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है । (हेम प्राकृत व्याकरण : 3–137)

सवि समणे (समण) 1/1 भगवं[1] (भगवन्त→भगवन्तो→भगवं) 1/1 उट्ठाय (उट्ठ) संकृ संखाए (संख) संकृ तंसि (त) 7/1 स हेमंते (हेमंत) 7/1 ग्रहुणा (ग्र)=इस समय पव्वइए (पव्वइग्र) भूकृ 1/1 ग्रनि. रीइत्था (री) भू 3/1 सक

103 अहासुतं=जैसा कि सुना है। वदिस्सामि=कहूँगा। जहा=प्रत्यक्ष उक्ति के ग्रारम्भ करते समय प्रयुक्त। से=वे (वह)। समणे=श्रमण। भगवं=भगवान्। उट्ठाय=त्यागकर। संखाए=जानकर। तंसि=उस (में)। हेमंते=हेमन्त में। अहुणा=इस समय। पव्वइए=दीक्षित हुए। रीइत्था=विहार कर गए।

104 ग्रदु (ग्र)=ग्रव पोरिसिं[2] (पोरिसी) 2/1 तिरियभित्तिं[3] [(तिरिय)-(भित्ति) 2/1] चक्खुमासज्ज [(चक्खुं) + (ग्रासज्ज)] चक्खुं (चक्खु) 2/1 ग्रासज्ज (ग्र)=रखकर या लगाकर ग्रंतसो (ग्र)= ग्रान्तरिक रूप से झाति[4] (झा) व 3/1 सक ग्रह (ग्र)=तब चक्खुभीतसहिया [(चक्खु)-(भीत[5])-(सहिय) 1/2] ते (त) 1/2 सवि हंता[6] (ग्र)=यहाँ ग्राग्रो हंता[7] (ग्र)=देखो बहवे (बहव) 2/2 वि कंदिसु[8] (कंद) भू 3/2 सक

---

1. ग्रर्ध मागधी में 'वाला' ग्रर्थ में 'मन्त' प्रत्यय जोड़ा जाता है, 'म का विकल्प से 'व' होता है। विकल्प से 'त' का लोप ग्रौर 'न्' का ग्रनुस्वार हो जाता है (ग्रभिनव प्राकृत व्याकरण, पृष्ठ 427)
2. काल वाचक शब्दों के योग में द्वितीया होती है।
3. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम प्राकृत व्याकरण: 3-137)
4. भूतकाल की घटनाग्रों का वर्णन करने में वर्तमान काल का प्रयोग किया जा सकता है।
5. भीत=डर यहाँ 'भीत' नपुंसक लिंग संज्ञा है (विभिन्न कोश देखें)
6-7. 'हंता' शब्द ग्रव्यय है (विभिन्न कोश देखें)
8. 'कंद' का कर्म के साथ ग्रर्थ होगा, 'पुकारना'।

104 अदु = अब । पोरिसिं = प्रहर तक (तीन घंटे की अवधि)। तिरियभित्ति = तिरछी भीत पर। चक्खुमासज्ज [(चक्खुं) + (आसज्ज)] आँखों को लगा कर। अंतसो = आन्तरिक रूप से। झाति = ध्यान करते हैं→ ध्यान करते थे। अह = तब। चक्खुभीतसहिया = आँखों के डर से युक्त। ते = वे। हंता = यहाँ आओ। हंता = देखो। बहवे = बहुत लोगों को। कंदिसु = पुकारते थे।

105 जे (अ) = पादपूर्ति केयिमे = के इमे के (अ) = कभी इमे (इम) 1/1 सवि अगारत्था (अगार-त्थ) 5/1 वि मीसीभावं (मीसीभाव) 2/1 पहाय (पहा) संकृ से (त) 1/1 सवि झाति (झा) व 3/1 सक पुट्ठो (पुट्ठ) भूकृ 1/1 अनि वि (अ) = भी णाभिभासिसु [(ण) + (अभिभासिसु)] ण (अ) = नहीं अभिभासिसु (अभिभास) भू-3/1 सक गच्छति (गच्छ) व 3/1 सक णाइवत्तती [(ण) + (अइवत्तती)] ण (अ) = नहीं अइवत्तती[1] (अइवत्त) व 3/1 सक अंजू (अंजु) 1/1 वि

105 जे = पादपूर्ति। केयिमे [(के) + (इमे)] = कभी, यह (ये)। अगारत्था = घर में रहने वाले से। मीसी-भावं = मेल-जोल के विचार को। पहाय = छोड़कर। से = वे (वह)। झाति = ध्यान करते हैं→ध्यान करते थे। पुट्ठो = पूछी गई। वि = भी। णाभिभासिसु] (अ) + (अभिभासिसु)] नहीं बोलते थे। गच्छति = चले जाते हैं→चले जाते थे। णाइवत्तती [(ण) + अइवत्तती)] नहीं उपेक्षा करते हैं→उपेक्षा करते थे। अंजू = संयम में तत्पर।

106 फरिसाइं (फरिस) 2/2 दुत्तितिक्खाइं (दुत्तितिक्ख) 2/2 वि अतिअच्च (अतिअच्च) संकृ अनि मुणी (मुणि) 1/1 परक्कममाणे (परक्कम)

---

1. छंद-मात्रा की पूर्ति हेतु यहाँ ह्रस्व स्वर दीर्घ हुआ है।
(पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 137,138)

वक्र 1/1 आघात-णट्ट-गीताइं [(आघात)-(णट्ट)-(गीत) 2/2] दंडजुद्धाइं[1] [(दंड)-(जुद्ध) 2/2] मुट्ठिजुद्धाइं[1] [मुट्ठि-(जुद्ध) 2/2]

106 फरिसाइं = कटु वचन। दुत्तितिक्खाइं = दुस्सह। अतिअच्च = अवहेलना करके। मुणी = मुनि। परक्कममाणे = पुरुषार्थ करते हुए। आघात-णट्ट-गीताइं = कथा, नाच, गान को→कथा, नाच, गान में। दंड-जुद्धाइं = लाठी-युद्ध को → लाठी-युद्ध में। मुट्ठिजुद्धाइं = मूठी-युद्ध को → मूठी-युद्ध में।

107 गढिए (गढिअ) 2/2 वि मिहु (अ) = परस्पर कहासु (कहा) 7/2 समयम्मि (समय) 7/1 णातसुते (णातसुत) 1/1 विसोगे (विसोग) 1/1वि अदक्खु (अदक्खु) भू आर्य एताइं (एत) 2/2 सवि से (त) 1/1 सवि उरालाइं (उराल) 2/2 गच्छति (गच्छ) व 3/1 सक णायपुत्ते (णायपुत्त) 1/1 असरणाए[2] (असरण) 4/1

107 गढिए = आसक्त को। मिहु-कहासु = परस्पर कथाओं में। समयम्मि = इशारे में। णातसुते = ज्ञातपुत्र। विसोगे = शोक-रहित। अदक्खु = देखते थे। एताइं = इन। से = वे (वह)। उरालाइं = मनोहर को। गच्छति = करते हैं—करते थे। णायपुत्ते = ज्ञात-पुत्र। असरणाएं = स्मरण नहीं।

108 पुढवि (पुढवी) 2/1 च (अ) = और आउकायं (आउकाय) 2/1 तेजकायं (तेजकाय 2/1 वायुकायं (वायुकाय) 2/1 पणगाइं (पणग) 2/2 बीयहरियाइं [(बीय)-(हरिय) 2/2 वि] तसकायं (तसकाय) 2/1 सव्वसो (अ) = पूर्णतया णच्चा (णच्चा) संकृ अनि

---

1. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3:137)
2. मार्गभिन्न गत्यर्थक क्रियाओं के कर्म में द्वितीया या चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है।

108 पुढविं=पृथ्वीकाय को। च=और। आउकायं=जलकाय को। तेउकायं=अग्निकाय को। वायुकायं=वायुकाय को। पणगाइं=शैवाल को। बीयहरियाइं=बीज, हरी वनस्पति। च=तथा। तसकायं=त्रसकाय को। सव्वसो=पूर्णतया। णच्चा=जानकारी।

109 एताइं=(एत) 1/2 सवि संति(अस) व 3/2 अक पडिलेहे[1] (पडिलेह) व 3/1 सक चित्तमंताइं (चित्तमंत) 1/2 वि से (त) 1/1 सवि अभिण्णाय (अभिण्णा) संकृ परिवज्जियाण (परिवज्ज) संकृ विहरित्था (विहर) भू 3/1 सक इति (अ)=इस प्रकार संखाए (संखा) संकृ महावीरे (महावीर) 1/1

109 एताइं=ये। संति=हैं। पडिलेहे=देखते हैं→देखा। चित्तमंताइं=चेतनवान्। से=उसने(उन्होंने)। अभिण्णाय=समझकर। परिवज्जियाण=परित्याग करके। विहरित्था=विहार करते थे। इति=इस प्रकार। संखाए=जानकर। से=वे (वह)। महावीरे=महावीर।

110 मातण्णे (मातण्ण) 1/1 वि असणपाणस्स [(असण)-(पाण) 6/1] णाणुगिद्धे [(ण)+(अणुगिद्धे)] ण (अ)=नहीं अणुगिद्धे (अणुगिद्ध) 1/1 वि रसेसु (रस) 7/2 अपडिण्णे (अपडिण्ण) 1/1 वि अच्छि (अच्छि) 2/1 पि (अ)=भी णो (अ)=नहीं पमज्जिया (पमज्ज) संकृ वि (अ)=भी य (अ)=और कंडुयए (कंडुय) व 3/1 सक मुणी (मुणि) 1/1 गातं (गात) 2/1

110 मातण्णे=मात्रा को समझने वाले। असणपाणस्स=खाने-पीने की। णाणुगिद्धे [(ण)→(अणुगिद्धे)] ण=नहीं। रसेसु=रसों में। अपडिण्णे=निश्चय नहीं। अच्छि=आँख को। पि=भी। णो=नहीं।

---

1. भूतकाल की घटनाओं का वर्णन करने में वर्तमानकाल का प्रयोग किया जा सकता है।

पमज्जिया = पोंछकर। णो = नहीं। वि = भी। य = और। कंडुयए = खुजलाते हैं→खुजलाते थे। मुणी = मुनि। गातं = शरीर को।

111 अप्पं (अ) = नहीं तिरियं (तिरिय) 2/1 पेहाए (पेह) संकृ पिट्ठओ (अ) = पीछे की ओर उप्पेहाए (उप्पेह) संकृ बुइअ (बुइअ) भूकृ 7/1 अनि पडिभाणी (पडिभाणि) 1/1 वि पथपेही [(पथ)-पेहि) 1/1 वि] चरे (चर) व 3/1 सक जतमाणे (जत) वकृ 1/1

111 अप्पं = नहीं। तिरियं = तिरछे को। पेहाए = देखकर। पिट्ठओ = पीछे की ओर। उप्पेहाए = देखकर। बुइए = संबोधित किए गए होने पर। पडिभाणी = उत्तर देने वाले। पथपेही = मार्ग को देखने वाला। चरे = गमन करते हैं→गमन करते थे। जतमाणे = सावधानी वरतते हुए।

112 आवेसण-सभा-पवासु [(आवेसण)-(सभा)-(पवा) 7/2] पणियसालासु (पणियसाल) 7/2 एगदा (अ) = कभी वासो (वास) 1/1 अदुवा (अ) = अथवा पलियट्ठाणेसु (पलियट्ठाण) 7/2 पलालपुंजेसु [(पलाल)-(पुंज) 7/2]

112 आवेसण-सभा-पवासु = शून्य घरों में, सभा भवनों में। प्याउओं में। पणियसालासु = दुकानों में। एगदा = कभी। वासो = रहना। अदुवा = अथवा। पलियट्ठाणेसु = कर्म स्थानों में। पलालपुंजेसु = घास-समूह में। वासो = ठहरना।

113 आगंतारे (आगंतार) 7/1 आरामागारे [(आराम) + (आगार)] [(आराम)-आगार) 7/1] नगरे (नगर) 7/1 वि (अ) = भी एगदा (अ) = कभी वासो (वास) 1/1 सुसाणे (सुसाण) 7/1 सुण्णागारे [(सुण्ण) + (आगारे)] [(सुण्ण)-(आगार) 7/1] वा (अ) = तथा रुक्खमूले [(रुक्ख)-(मूल) 7/1] वि (अ) = भी

113 आगंतारे = मुसाफिर खाने में। आरामागारे = बगीचे में (बने हुए)

स्थान में। नगरे = नगर में। वि = भी। एगदा = कभी। वासो = रहना। सुसाणे = मसाण में। सुण्णगारे = सूने घर में। वा = तथा। रुक्खमूले = पेड़ के नीचे के भाग में। वि = भी।

114 एतेहिं[1] (एत) 3/2 सवि मुणी (मुणि) 1/1 सयणेहिं[1] (सयण) 3/2 समणे (स-मण) 1/1 वि आसि[2] (अस) भू 3/1 अक पतेलसं[3] (पतेलस) मूल शब्द 7/1 वि वासे (वास) 7/1 राइंदिवं[4] (क्रिविअ) = रात-दिन पि (अ) = ही जयमाणे (जय) वकृ 1/1 अप्पमत्ते (अप्पमत्त) 7/1 वि समाहित (समाहित) 7/1 वि झाती[5] (झा) व 3/1 सक

114 एतेहिं = इन द्वारा→इनमें। मुणी = मुनि। सयणेहिं = स्थानों के द्वारा —स्थानों में। समणे = समता युक्त मनवाले। आसि = रहे। पतेलस = तेरहवें। वासे = वर्ष में। राइंदिवं = रातदिन। पि = ही। जयमाणे = सावधानी बरतते हुए। अप्पमत्ते = अप्रमाद-युक्त। समाहिते = एकाग्र (अवस्था) में। झाती = ध्यान करते हैं→ध्यान करते थे।

---

1. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)
2. आसी अथवा आसि, सभी-पुरुषों और वचनों में भूतकाल में काम में आता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 749)
3. किसी भी कारक के लिए मूल शब्द (संज्ञा) काम में लाया जाता है। (मेरे विचार से यह नियम विशेषण पर भी लागू किया जा सकता है) (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517)
4. राइंदिवं—यह नपुंसक लिंग है। (Eng. Dictionary, Monier Williams). इससे क्रिया-विशेषण अव्यय बनाया जा सकता है। (राइंदिवं)
5. छंद की मात्रा की पूर्ति हेतु 'ति' को 'ती' किया गया है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 137, 138)

115 णिद्दं (णिद्द) 2/1 पि (अ) = कभी भी णो (अ) = नहीं पगामाए (पगाम) 4/1 सेवइ (सेव) व 3/1 सक या = जा = जाव (अ) = ठीक उसी समय भगवं[1] (भगवन्त→भगवन्तो→भगवं) 1/1 उट्ठाए (उट्ठ) संकृ जग्गावतीय [(जग्गावति) + (इय)] जग्गावति (जग्गा-प्रेरक जग्गाव) व 3/1 सक इय (अ) = और अप्पाणं (अप्पाण) 2/1 ईसिं (अ) = थोड़ासा साईय साई (साइ) 1/1 वि य (अ) = बिल्कुल अपडिण्णे (अपडिण्ण) 1/1 वि

115 णिद्दं = नींद को। पि = कभी भी। णो = नहीं। पगामाए = आनन्द के लिए। सेवइ = उपभोग करते हैं→उपभोग करते थे। या = ठीक उसी समय। भगवं = भगवान्। उट्ठाए = खड़ा करके। जग्गावतीय = [(जग्गावति) + (इय)] जगा लेते हैं→जगा लेते थे। इय = और। अप्पाणं = अपने को। ईसिं = थोड़ा सा। साई = सोने वाले। य = बिल्कुल। अपडिण्णे = इच्छारहित।

116 संबुज्झमाणे (संबुज्झ) वकृ 1/1 पुणरवि (अ) = फिर आसिसु (आस) भू 3/1 अक भगवं[1] (भगवं) 1/1 उट्ठाए (उट्ठ) संकृ णिक्खम्म (णिक्खम्म) संकृ अनि एगया (अ) = कभी कभी राओ (अ) = रात में बहिं (अ) = बाहर चक्कमिया[2] (चक्कम) संकृ मुहुत्तागं[3] (मुहुत्ताग) 2/1

116 संबुज्झमाणे = पूर्णतः जागते हुए। पुणरवि = फिर। आसिसु = बैठ जाते थे। भगवं = भगवान् उट्ठाए = सक्रिय होकर। णिक्खम्म = बाहर निकलकर। एगया = कभी-कभी। राओ = रात में। बहिं = बाहर। चक्कमिया = इधर-उधर घूमकर। मुहुत्तागं = कुछ समय तक।

---

1. देखें सूत्र 87
2. समय के शब्दों में द्वितीया होती है।
3. पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 834.

117 सयणेहिं[1] (सयण) 3/2 तस्सुवसग्गा [(तस्स)+(उवसग्गा)] तस्स (त) 4/1 स. उवसग्गा (उवसग्ग) 1/2 भीमा (भीम) 1/2 वि आसी[2] (अस) भू 3/2 अक अणेगरुवा (अणेगरूव) 1/2 वि य (अ)=भी. संसप्पगा (संसप्पग) 1/2 वि य (अ)=भी जे (ज) 1/2 सवि पाणा (पाण) 1/2 अदुवा (अ)=और पक्खिणो (पक्खि) 1/2 उवचरंति (उवचर) व 3/2 सक

117 सयणेहिं=स्थानों के द्वारा → स्थानों में। तस्सुवसग्गा [(तस्स)+(उवसग्गा)]=उनके लिए, कष्ट। भीमा=भयानक। आसी=वर्तमान थे। अणेगरुवा=नानाप्रकार के। य=भी। संसप्पगा=चलने फिरने वाले। य=भी। जे=जो। पाणा=जीव। अदुवा=और। पक्खिणो=पंख-युक्त। उवचरंति=उपद्रव करते हैं → उपद्रव करते थे।

118 इहलोइयाइं (इहलोइय) 2/2 वि परलोइयाइं (परलोइय) 2/2 वि भीमाइं (भीम) 2/2 वि अणेगरूवाइं (अणेगरूव) 2/2 वि अवि (अ)=और सुब्भिदुब्भिगंधाइं[3] [(सुब्भि) वि-दुब्भि) वि-(गंध) 2/2] सद्दाइं[4] (सद्द) 2/2 अणगरूवाइं (अणेगरूव) 2/2 वि

118 इहलोइयाइं=इस लोक सम्बन्धी। परलोइयाइं=पर लोक सम्बन्धी। भीमाइं=भयानक को। अणेगरूवाइं=नाना प्रकार के। अवि=और। सुब्भिदुब्भिगंधाइं=रुचिकर और अरुचिकर गंधों को→में। सद्दाइं=शब्दों को→में।

---

1. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण: 3-137)
2. 'आसी' अथवा 'आसि' सभी पुरुषों और वचनों में भूतकाल में काम आता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण पृष्ठ 749)
3-4. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण: 3-137)

119 अधियासए (अधियास) व 3/1 सक सया (अ) = सदा समिते (समित) 1/1 वि फासाइं (फास) 2/2 विरूवरूवाइं (विरूवरूव) 2/2 वि अरतिं (अरति) 2/1 वि रतिं (रति) 2/1 वि अभिभूय (अभि-भू) संकृ रीयति[1] (री) व 3/1 सक माहणे (माहण) 1/1 वि अवहुवादी [(अ-वहु) वि-(वादि) 1/1 वि]

119 अधियासए = झेलता है→झेला। सया = सदा। समिते = समता-युक्त। फासाइं = कष्टों को। विरूवरूवाइं = अनेक प्रकार के। अरतिं = शोक को। रतिं = हर्ष को। अभिभूय = विजय प्राप्त करके। रीयति = गमन करते हैं→गमन करते रहे। माहणे = अहिंसक। अवहुवादी = वहुत न बोलने वाले।

120 लाढेहिं[2] (लाढ) 3/2 तस्सुवसग्गा [(तस्स)+(उवसग्ग)] तस्स (त) 4/1 स उवसग्गा (उवसग्ग) 2/2 वहवे (वहव) 2/2 वि जाणवया (जाणवय) 1/2 लूसिंसु (लूस) भू 3/2 सक अह (अ) = उसी तरह लूहदेसिए [(लूह)-(देसिअ) 1/1 वि] भत्ते (भत्त) भूकृ 1/1 अनि कुक्कुरा (कुक्कुर) 1/2 तत्थ (अ) = वहाँ पर हिंसिंसु (हिंस) भू 3/2 सक णिवतिंसु (णिवत) भू 3/1 सक

120 लाढेहिं = लाढ़ देश में। तस्सुवसग्गा = [(तस्स)+(उवसग्गा)) उनके लिए, कष्ट। वहवे = वहुत। जाणवया = रहनेवाले लोगों ने। लूसिंसु = हैरान किया। अह = उसी तरह। लूहदेसिए = रूखे, निवासी। भत्ते = पकाया हुआ भोजन। कुक्करा = कुत्ते। तत्थ = वहाँ पर। हिंसिंसु = संताप देते थे। णिवतिंसु = टूट पड़ते थे।

---

1. अकारांत धातुओं के अतिरिक्त अन्य स्वरान्त धातुओं में विकल्प से 'अ' या 'य' जोड़ने के पश्चात् विभक्ति चिह्न जोड़ा जाता है।
2. देशों के नाम प्रायः वहुवचन में होते हैं। कभी कभी सप्तमी के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है।
(हेम प्राकृत व्याकरण 3-137)

121 अप्पे (अप्प) 1/1 वि जणे (जण) 1/1 णिवारेंति (णिवार) व 3/1 सक लूसणए (लूसणअ) 2/2 वि स्वार्थिक 'अ' सुणए (सुणअ) 2/2 डसमाणे (डसमाण) 2/2 छुच्छु करेंति (छुच्छुकर) व 3/2 सक आहंसु (आह) भू 3/2 सक समणं[1] (समण) 2/1 कुक्कुरा (कुक्कुर) 2/2 दसंतु[2] (दस) विधि 3/2 अक त्ति (अ)=जिससे

121 अप्पे=कुछ। जणे=लोग। णिवारेंति=दूर हटाते हैं-दूर हटाते थे। लूसणए=हैरान करने वाले को। सुणए=कुत्तों को। डसमाणे=काटते हुए। छुच्छुकरेंति=छू-छू की आवाज करते हैं→छू-छू की आवाज करते थे। आहंसु=बुला लेते थे। समणं=महावीर के (पीछे)। कुक्करा=कुत्तों को। दसंतु=थक जाएँ। त्ति=जिससे।

122 हत-पुव्वो (हतपुव्व) 1/1 वि तत्थ (अ)=वहाँ डंडेण (डंड) 3/1 अदुवा (अ)=अथवा मुट्ठिणा (मुट्ठि) 3/1 अदु (अ)=अथवा फलेणं (फल) 3/1 लेलुणा (लेलु) 3/1 कवालेणं (कवाल) 3/1 हंता (अ)= आओ हंता (अ)=देखो बहवे (बहव) 2/2 वि कंदिसु (कंद) भू 3/2 सक

122 हतपुव्वो=पहले प्रहार किया गया। तत्थ=वहाँ। डंडेण=लाठी से। अदुवा=अथवा। मुट्ठिणा=मुक्के से। अदु=अथवा। फलेण=चाकू, तलवार, भाला आदि से। अदु=अथवा। लेलुणा=ईंट, पत्थर आदि के टुकड़े से। कवालेण=ठीकरे से। हंता=आओ। हंता=देखो। बहवे=बहुतों को। कंदिसु=पुकारते थे।

123 सूरो (सूर) 1/1 वि संगामसीसे [(संगाम)-(सीस) 7/1] वा (अ)= जैसे संवुडे (संवुड) भूकृ 1/1 अनि तत्थ (अ)=वहाँ से (त) 1/1 सवि

---

1. 'पीछे' के योग में द्वितीया होती है।
2. दस=Te become exhausted (Eng. Dictionary by Monier Williams, P. 473 Col. 1) तथा सम्मान प्रदर्शित करने में बहुवचन का प्रयोग हुआ है।

महावीरे (महावीर) 1/1 पडिसेवमाणो (पडिसेव) वकृ 1/1 फरुसाइं (फरुस) 2/2 वि अचले (अचल) 1/1 वि भगवं (भगवन्त→भगवन्तो→भगवं) 1/1 रीयित्था (री)[1] भू 3/1 सक

123 सूरो=योद्धा। संगामसीसे=संग्राम के मोर्चे पर। वा=जैसे। संवुडे=ढका हुआ। तत्थ=वहां। से=वे। महावीरे=महावीर। पडिसेवमाणो=सहते हुए। फरुसाइं=कठोर को। अचले=अस्थिरता-रहित। भगवं=भगवान्। रीयित्था=विहार करते थे।

124 अवि (अ)=और साहिए[2] (साहिअ) 2/2 वि दुवे[2] (दुव) 2/2 वि मासे[2] (मास) 2/2 छप्पि [(छ)+(अपि)] छ (छ) 2/2. अपि (अ)=भी अदुवा (अ)=अथवा अपिवित्था (अपिव) भू 3/1 सक राओवरातं [(राअ)+(उवरातं)] [(राअ)-(उवरात) 2/1] अपडिण्णे (अपडिण्ण) 1/1 वि अण्णगिलायमेगता [(अण्ण)+(गिलायं)+(एगता)] [(अण्ण)-(गिलाय) 2/1] एगता (अ)=कभी कभी भुंजे (भुंज) व 3/1 सक

124 अवि=और। साहिए=अधिक। दुवे=दो। मासे=मास में। छप्पि [(छ+अपि)]=छः, भी। मासे=मास तक। आपिवित्था=नहीं पीते थे। राओवरातं=[(राअ)+(उवरातं)]=रात में दिन को→दिन में। अपडिण्णे=राग-द्वेषरहित। अण्णगिलायमेगता=
?
[(अण्ण)-(गिलायं)+(एगता)] भोजन, बासी को, कभी कभी। भुंजे=खाता है→खाया।

---

1. अकारान्त धातुओं के अतिरिक्त अन्य स्वरान्त धातुओं में विकल्प से 'अ' या 'य' जोड़ने के पश्चात् विभक्ति चिह्न जोड़ा जाता है।
2. कभी कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137) और समय बोधक शब्दों में सप्तमी होती है।

125 छट्ठेण[1] (छट्ठ) 3/1 एगया (अ)=कभी भुंजे (भुंज) व 3/1 सक अदुवा (अ)=अथवा अट्ठमेण[1] (अट्ठम) 3/1 दसमेण[1] (दसम) 3/1 दुवालसमेण[1] (दुवालसम) 3/1 एगदा (अ)=कभी पेहमाणे (पेह) वकृ 1/1 समाहिं (समाहि) 2/1 अपडिण्णे (अपडिण्ण) 1/1 वि

125 छट्ठेण=दो दिन के उपवास के बाद में। एगया=कभी। भुंजे= भोजन करते हैं->भोजन करते थे। अदुवा=अथवा। अट्ठमेण=तीन दिन के उपवास के बाद में। दसमेण=चार दिन के उपवास के बाद में। दुवालसमेण=पांच दिन के उपवास के बाद में। एगदा= कभी। पेहमाणे=देखते हुए। समाहिं=समाधि को। अपडिण्णे= निष्काम।

126 णच्चाण[2] (णा) संकृ से (त) 1/1 सवि महावीरे (महावीर) 1/1 णो (अ)=नहीं वि (अ)=भी य (अ)=बिल्कुल पावगं (पावग) 2/1 सयमकासी [(सयं)+(अकासी)] सयं (अ)=स्वयं, अकासी (अकासी) भू 3/1 सक अण्णेहिं (अण्ण) 3/2 वि वि (अ)=भी ण (अ)=नहीं प्रे.
कारित्था (कर-कार) भू 3/1 सक कीरंतं (कीरंत) वकृ कर्म 2/1 अनि पि (अ)=भी णाणुजाणित्था [(ण)+(अणुजाणित्था)] ण (अ) =नहीं अणुजाणित्था (अणुजाण) भू 3/1 सक

126 णच्चाण=जानकर। से=वे। महावीरे=महावीर। णो=नहीं। वि=भी। य=बिल्कुल। पावगं=पाप (को) सयमकासी [(सयं)+ (अकासी)] स्वयं, करते थे। अण्णेहिं=दूसरों से। वि=भी। ण= नहीं। कारित्था=करवाते थे। कीरंतं=किए जाते हुए। पि=भी।

---

1. कभी कभी पंचमी विभक्ति के स्थान में तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण: 3-136) यहाँ 'बाद में' अर्थ लुप्त है, तथा 'बाद में' अर्थ के योग में पंचमी होती है।
2. पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 830.

णाणुजाणित्था [(ण) + (अणुजाणित्था)] ण = नहीं; अनुमोदन करते थे।

127 गामं (गाम) 2/1 पविस्स[1] (पविस्स) संकृ अनि णगरं (णगर) 2/1 वा (अ) = या घासमेसे [(घासं) + (एसे)] घासं (घास) 2/1 एसे (एस) व 3/1 सक कडं (कड) भूकृ 2/1 अनि परट्ठाए (परट्ठा) 4/1 सुविसुद्धमेसिया [(सुविसुद्धं) + (एसिया)] सुविसुद्धं (सुविसुद्ध) 2/1 वि एसिया[2] (एस) संकृ भगवं (भगवं) 1/1 आयतजोगताए [(आयत) वि-(जोगता) 3/1] सेवित्था (सेव) भू 3/1 सक।

127 गामं = गाँव। पविस्स = प्रवेश करके। णगरं = नगर को→में। वा = या। घासमेसे [(घासं)-(एसे)] आहार को, भिक्षा ग्रहण करता है→ करते थे। कडं = बने हुए। परट्ठाए = दूसरे के लिए। सुविसुद्धमेसिया [(सुविसुद्धं) + (एसिया)] सुविसुद्ध, भिक्षा ग्रहण करके। भगवं = भगवान्। आयतजोगताए = संयत, योगत्व से। सेवित्था = उपयोग में लाते थे।

128 अकसायी (अकसायि) 1/1 वि विगतगेही [(विगत) भूकृ अनि—(गेहि) 1/1] य (अ) = और सद्द-रुवेसुऽमुच्छिते [(सद्द) + (रुवेसु) + (अमुच्छिते)] [(सद्द)—(रुव) 7/2] अमुच्छिते (अमुच्छित) 1/1 वि झाती[3] (झा) व 3/1 सक छउमत्थे (छउमत्थ) 1/1 वि वि (अ) = भी विप्परक्कममाणे (विप्परक्कम) वकृ 1/1 ण (अ) = नहीं पमायं (पमाय) 2/1 सइं (अ) = एकवार पि (अ) = भी कुव्वित्था (कुव्व) भू 3/1 सक

128 अकसायी = कषाय-रहित। विगतगेही = लोलुपता नष्ट करदी गई। सद्द-रुवेसुऽमुच्छिते = शब्दों, रूपों में अनासक्त। झाती = ध्यान करते हैं

---

1. 'गमन' अर्थ के साथ द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है।
2. पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण : पृष्ठ, 834.
3. छंद की मात्रा की पूर्ति हेतु 'ति' को 'ती' किया गया है।

→ध्यान करते थे। छउमत्थे=असर्वज्ञ। वि=भी। विप्परक्कममाणे =साहस के साथ करते हुए। ण=नहीं। पमायं=प्रमाद (को)। सइं=एकबार। पि=भी। कुव्वित्था=किया।

129 सयमेव [(सयं)+(एव)] सयं (अ)=स्वयं, एव (अ)=ही अभिसमागम्म (अभिसमागम्म) संकृ अनि आयतजोगमायसोहीए [(आयत)+(जोगं)+(आय)+सोहिए)] [(आयत) वि—(जोग) 2/1] [(आय)—सोहि) 3/1] अभिणिव्वुडे [अभिणिव्वुड) 1/1 वि अमाइल्ले (अमाइल्ल) 1/1 वि आवकहं (अ)=जीवन-पर्यन्त भगवं (भगवं) 1/1 समितासी [(समित)+(आसी)] समित[1] (समित) मूल शब्द 1/1 आसी (अस) भू 3/1 अक

129 सयमेव](सयं)+एव)]=स्वयं, ही। अभिसमागम्म=प्राप्त करके। आयतजोगमायसोहीए [(आयत) + (जोगं) + (आय) + (सोहीए)] संयत, प्रवृत्ति को, आत्म, शुद्धि के द्वारा। अभिणिव्वुडे=शान्त। अमाइल्ले=सरल। आवकहं=जीवन-पर्यन्त। भगवं=भगवान्। समितासी [(समित)+(आसी)] समता-युक्त, रहे।

---

1. किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है। [पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 517] [मेरे विचार से यह नियम विशेषण पर भी लागू किया जा सकता है]
आसी अथवा आसि सभी पुरुषों और वचनों में भूतकाल में काम आता है। [देखें गाथा 101]

टिप्पण

द्रव्य–पर्याय

जो गुण और पर्यायों से संयुक्त है वही द्रव्य है। गुण और पर्याय को छोड़कर द्रव्य कोई स्वतन्त्र वस्तु नहीं है। द्रव्य गुणों और पर्यायों के विना नहीं होता तथा गुण और पर्यायें द्रव्य के विना नहीं होती। उदाहरणार्थ, स्वर्ण से पृथक् उसके पीलेपन आदि गुणों का तथा कुण्डलादि पर्यायों का अस्तित्व संभव नहीं है। अतः यह स्पष्ट है कि जो नित्य रूप से द्रव्य में पाया जाय वह गुण है तथा जो परिणमनशील है वह पर्याय है। इस तरह से पर्याय परिणमनशील होती है तथा गुण नित्य। इसके अतिरिक्त गुण वस्तु में एक साथ विद्यमान रहते हैं। किन्तु, पर्यायें क्रमशः उत्पन्न होती हैं। अतः द्रव्य गुण की अपेक्षा नित्य होता है और पर्याय की अपेक्षा अनित्य या परिणामी होता है। इस प्रकार द्रव्य नित्य-अनित्य सिद्ध होता है।

आचारांग का कथन है कि पर्याय-दृष्टि अनित्य पर दृष्टि होने के कारण नित्य से व्यक्ति को विमुख करती है, इसलिए द्रव्य-दृष्टि नाशक होने से शस्त्र है। द्रव्य-दृष्टि नित्य पर दृष्टि होने के कारण अशस्त्र कही गई है।

इस प्रकार विचारने से व्यक्ति सुख-दुःख, हर्ष-शोक, से परे आत्मा में स्थित हो जाता है।

आत्मा

द्रव्य के छह भेद हैं: 1. जीव अथवा आत्मा, 2. पुद्गल, 3. धर्म, 4. अधर्म, 5. आकाश और 6. काल।

सब द्रव्यों में आत्मा ही सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि केवल आत्मा को ही हित-अहित, हेय-उपादय, सुख-दुःख आदि का ज्ञान होता है। अन्य द्रव्यों में इस प्रकार

के ज्ञान का अभाव होता है। अतः वे अजीव हैं। आत्मा का लक्षण चैतन्य है। यह चैतन्य ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक रूप में प्रयुक्त होता है। आत्मा ज्ञाता होने के साथ-साथ कर्त्ता और भोक्ता भी है। आत्मा संसार अवस्था में अपने शुभ अशुभ कर्मों का कर्त्ता और उनके फलस्वरूप उत्पन्न सुख-दुखः का भोक्ता भी है। मुक्त अवस्था में आत्मा अनन्तज्ञान का स्वामी होता है। शुभ अशुभ से परे शुद्ध क्रियाओं का (राग-द्वेष रहित क्रियाओं का) कर्त्ता होता है और अनन्त आनन्द का भोक्ता होता है। जैन-दर्शन के अनुसार आत्मा एक नहीं अनेक अर्थात् अनन्त है।

संसारी आत्मा अनादिकाल से कर्मों से आवद्ध है। इसी कारण संसारी जीव जन्म-मरण के चक्कर में पड़ा रहता है। इतना होते हुए भी प्रत्येक संसारी आत्मा सिद्ध समान है। दोनों में भेद केवल कर्मों के वन्धन का है। यदि कर्मों के वन्धन को हटा दिया जाए, तो आत्मा का सिद्ध स्वरूप (जो अनन्त ज्ञान, सुख और शक्ति रूप में) प्रकट हो जाता है।

जीव या आत्मा ही अपने उत्थान व पतन का उत्तरदायी है। वही अपना शत्रु है और वही अपना मित्र है। अज्ञानी होने से ज्ञानी होने का और वद्ध से मुक्त होने का सामर्थ्य उसी में होता है। वह सामर्थ्य कहीं वाहर से नहीं आता है, वह तो उसके प्रयास से ही प्रकट होता है।

सांसारिक दृष्टिकोण से जीवों का वर्गीकरण इन्द्रियों की अपेक्षा किया गया है। सवसे निम्न स्तर पर एक इन्द्रिय जीव है, जिनके केवल एक स्पर्शन इन्द्रिय ही होती है। एक इन्द्रिय जीव के पांच भेद हैं: पृथ्वीकायिक जल-कायिक, अग्निकायिक, वनस्पतिकायिक तथा वायुकायिक। इनमें चेतना सवसे कम विकसित होती है। इनसे उच्चस्तर के जीवों में दो इन्द्रियों से पांच इन्द्रियों तक के जीव हैं। ये त्रस जीव कहलाते हैं। कुछ जीवों में स्पर्शन और रसना-ये दो इन्द्रियाँ होती है (सीपी, शंख, आदि)। कुछ जीवों के स्पर्शन, रसना और घ्राण-ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं (जूं, खटमल, चींटी आदि)। कुछ जीवों के स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु —ये चार इन्द्रियाँ होती हैं (मच्छर,

मक्खी, भँवरा आदि) । कुछ जीवों के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण– ये पांच इन्द्रियाँ होती है (मनुष्य, पशु, पक्षी, आदि) ।

परम-आत्मा या समतादर्शी वह है जिसने आत्मोत्थान में पूर्णता प्राप्त करली है, जिसने काम, क्रोधादि दोषों को नष्ट कर दिया है, जिसने अनन्तज्ञान, अनन्तराशि, और अनन्तसुख प्राप्त कर लिया है तथा जो सदा के लिए जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो गया है ।

लोक

यह लोक छह द्रव्यमयी है । पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, और जीव इन छह द्रव्यों से निर्मित है । यह अनादि है तथा नित्य है । जीव चेतन द्रव्य है तथा पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल अचेतन द्रव्य है ।

जिसमें रूप, रस, गंध और स्पर्श-ये चार गुण पाये जाते जाते हैं वह पुद्गल है । सब दृश्यमान पदार्थ पुद्गलों द्वारा निर्मित है । पुद्गल द्रव्य के दो भेद हैं: 1. परमाणु और 2. स्कंध । दो या दो से अधिक परमाणुओं के मेल को स्कंध कहते हैं । जो पुद्गल का सबसे छोटा भाग है, जिसे इन्द्रियाँ ग्रहण नहीं कर सकती है, जो अविभागी है, वह परमाणु है । परमाणु अविनाशी है । पर-माणुओं के विभिन्न प्रकार के संयोग से नाना प्रकार के पदार्थ बनते हैं ।

जो जीव व पुद्गल की गमन क्रिया में सहायक होता है वह धर्म द्रव्य है । यह उसी प्रकार क्रिया में सहायक होता है जिस प्रकार मछलियों को चलने के लिए जल । जैसे हवा दूसरी वस्तुओं में गमन-क्रिया उत्पन्न कर देती है, वैसे धर्म द्रव्य गमनक्रिया उत्पन्न नहीं करता है । यह तो गमनक्रिया का उदासीन कारण है, न कि प्रेरक कारण । जो स्वयं चल रहे हैं उन्हें बलपूर्वक नहीं चलाता है । धर्म द्रव्य रूप, रस, गंध आदि स्पर्श रहित होता है ।

जो जीव व पुद्गल की स्थिति में उसी प्रकार सहायक होता है जिस प्रकार चलते हुए पथिकों के ठहरने में छाया । यह चलते हुए जीव व पुद्गल को ठहरने की प्रेरणा नहीं करता है, किन्तु स्वयं ठहरे हुओं के ठहरने में

उदासीन रूप से कारण होता है। यह रूप, रसादि रहित होता है।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि यहां धर्म का अर्थ पुण्य और अधर्म का अर्थ पाप नहीं है। ये दोनों रूप रसादि रहित अखण्ड द्रव्य हैं।

जो जीवादि द्रव्यों के परिणमन में सहायक है वह काल है। प्रत्येक द्रव्य परिणामी-नित्य होता है। द्रव्य के परिणमन में काल द्रव्य सहायक होता है। सैंकिड, मिनट, घण्टा दिन आदि व्यवहार, तथा युवावस्था, वृद्धावस्था, नवीनता और प्राचीनता, गमन, आदि व्यवहार जिससे होता है वह व्यवहारकाल है। यह क्षणभंगुर और पराश्रित है। परमार्थ काल नित्य और स्वाश्रित है।

जो जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, और काल को स्थान देता है वह आकाश है। यह आकाश एक है, सर्वव्यापक है, अखण्ड है और रूप रसादि गुणों से रहित है। जहाँ जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल द्रव्य रहते हैं वह लोकाकाश है और इससे परे अलोकाकाश।

कर्म-क्रिया

जैन-दर्शन के अनुसार सब आत्माएँ मूलतः सिद्ध समान है। उनमें स्वरूप अपेक्षा कोई वैषम्य नहीं है। जगत् में राग-द्वेषात्मक अवस्थाओं का कारण कर्म है। जीव के राग-द्वेष आदि भाव 'भाव' कर्म और इनके फलस्वरूप जीव की ओर आकृष्ट होकर निबटने वाले कर्म-पुद्गलों को 'द्रव्य' कर्म कहते हैं।

जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि है। किन्तु, जब आत्मा को अपनी शक्ति का भान हो जाता है तो कर्म बलहीन हो जाते हैं और एक दिन वह आत्मा कर्मों पर विजय प्राप्त करके समत्व को प्राप्त कर लेता है।

कषाय सहित, मन, वचन, और काय की क्रियाएं कर्मों के वन्धन का कारण होती हैं, जैसे गीला कपड़ा वायु के द्वारा लाई हुई धूल को चारों ओर से चिपटा लेता है, उसी तरह कषायरूपी जल से गीली आत्मा मन, वचन और काय की क्रियाओं द्वारा लाई गई कर्म-रज को चिपटा लेता है। अहिंसात्मक क्रियाएँ शुभ होती हैं और हिंसात्मक क्रियाएं अशुभ होती हैं।

आचारांग-चयनिका के विषयों की रूपरेखा

1. आचारांग की दार्शनिक पृष्ठ-भूमि और धर्म का स्वरूप

(i) आचारांग का महत्व

	सूत्र-संख्या
(क) व्यक्ति के उत्थान व समाज के विकास को समान महत्व	

(ii) आचारांग का प्रारम्भ : मनोवैज्ञानिक

(क) मनुष्य की सामान्य जिज्ञासा : मैं कहां से आया हूँ और कहां जाऊँगा (पूर्वजन्म और पुनर्जन्म)	1
(ख) पूर्वजन्म का ज्ञान :	2
(ग) शाश्वत आत्मा का ज्ञान (आत्मवादी)	3, 95
(घ) संसार-अवस्था में शरीर और आत्मा का मेल : मन-वचन और काय की क्रियाएँ होती रहती हैं (क्रियावादी)	3
(च) क्रिया का प्रभाव वर्तमान रहता है (कर्मवादी)	3
(छ) प्राणियों का अस्तित्व, देश-काल का अस्तित्व, पुद्गल का अस्तित्व तथा गमन-स्थिति में सहायक द्रव्यों का अस्तित्व (लोकवादी)	3

(iii) व्यक्तित्व में क्रियाएँ महत्वपूर्ण :

(क) क्रियाओं का प्रयोजन	5, 6
(ख) मनुष्य को क्रियाओं की सही दिशा का ज्ञान नहीं	4

(ग) हिंसात्मक क्रियाएँ क्यों ? एवं कायिक जीव की मनुष्य से तुलना — 8 से 17 एवं 12

(iv) धर्म की दो व्याख्याएँ : — सूत्र-संख्या

(क) अहिंसामूलक — 72

(ख) समतामूलक (सामाजिकपक्ष एवं वैयक्तिक पक्ष) — 34, 88 एवं 90

(ग) धर्म कहां ? — 102

(v) अहिंसा का चारों दिशाओं में प्रचार : — 101

(vi) प्राणियों का अस्तित्व : — 21

(vii) हिंसा क्यों नहीं ? तर्क :

(क) मनोवैज्ञानिक तर्क — 23, 36

(ख) सामाजिक तर्क — 69 (अंतिम पंक्ति)

(ग) दार्शनिक-आध्यात्मिक तर्क — 94

(viii) हिंसा से हानि — 8,9,10,11,13,15 16 (अंतिम पंक्ति)

2. मूर्च्छित मनुष्य की अवस्था

(i) मूर्च्छित व्यक्ति की स्थिति : — 51, 98

(ii) इन्द्रिय-विषयों में आसक्त : — 22,26,38,45,78

(iii) अर्हत् की आज्ञा से दूर : — 22

(iv) इच्छाओं की तीव्रता : — 43,81,98

(v) संग्रह में आसक्त : — 74,35

(vi) अनेकचित्तो का होना : — 60

(vii) वस्तुओं के दोहरे स्वभाव को न समझना : — 39

(viii) भय से ग्रसित होना — 69, 86

	सूत्र-संख्या
(ix) हिंसात्मक क्रियाओं में संलग्न होना फिर भी अहिंसा का उपदेश देना :	29, 43, 23 तथा 25
(x) पार जाने में असमर्थता :	37
(xi) असत्य में ठहरना :	37 (अंतिम पंक्ति)
(xii) वैर की वृद्धि तथा बारम्बार जन्म :	45 तथा 53
(xiii) उत्थान में मूढ़ बनना :	91
(xiv) मूर्च्छित मनुष्य की स्थिति-संक्षेप में :	18

3. मूर्च्छा कैसे टूट सकती है ?

(i) मृत्यु की अनिवार्यता का भान होने से या शरीर की नश्वरता का भान होने से या जन्म-मरण के दुःख को अनुभव करने से :	36, 74, 85 82, 61
(ii) बुढ़ापे की स्थिति को समझने से :	27, 28
(क) आत्मीय-जन सहारे के लिए पर्याप्त नहीं होते हैं :	27
(ख) शक्ति क्षीण होने से पूर्व आत्म-हित करना :	30
(iii) धन-वैभव की अस्थिरता का ज्ञान होने से :	37
(iv) कर्मों के फल भोगने का ज्ञान होने से :	94 (अन्तिम पंक्ति) 56, 79 (अन्तिम पंक्ति)
(v) प्राणियों की पीड़ा को समझने से :	53, 69 (पांचवीं पंक्ति) 77
(vi) द्रष्टा-भाव का अभ्यास करने से :	62, 23

4. **जीवन-विकास के सूत्र**

		सूत्र-संख्या
(v)	वर्तमान का देखने वाला बनना :	65
(vi)	जीवन-विकास का माप-दण्ड :	66 (दूसरी और तीसरी पंक्ति)

5. जागृत मनुष्य की अवस्था

(i)	जागृति के मार्ग पर चलते हुए लोक-प्रशंसा के आकर्षण से दूर रहना :	73
(ii)	जागृति के मार्ग पर चलने से चित्त का सुन्दर होना :	68
(iii)	जागृत व्यक्ति के लक्षण :	
	(क) उपदेश सुनने की आवश्यकता नहीं :	38
	(ख) कोई नाम नहीं होता :	71
	(ग) 'वीर' संज्ञा को प्राप्त होना :	20, 54
	(घ) लोक प्रचलित आचरण का होना आवश्यक नहीं :	55
	(च) समाज व व्यक्ति के लिए प्रकाश स्तंभ :	50, 47
	(छ) विकल्पों से परे हो जाना :	50
	(ज) 'सरल' होना :	54, 75
	(झ) आश्रित होना :	100
	(प) द्वन्द्वातीत होना और समता में स्थित होना :	56,25,31, 92
	(फ) अनुभव अपरिवर्तनशील :	47, 64
	(ब) पूर्ण जागरूक व अप्रमादी :	49, 51, 84
	(भ) अनुपम प्रसन्नता में रहना :	48
	(त) इन्द्रियों के विषयों का द्रष्टा :	52
	(थ) लोक-कल्याण में संलग्न :	58

आचारांग-चयनिका एवं आचारांग

सूत्र-क्रम

चयनिका क्रम	आचारांग सूत्र-क्रम	चयनिका क्रम	आचारांग सूत्र-क्रम	चयनिका क्रम	आचारांग सूत्र-क्रम
1	1	16	14 25 36	30	68
2	2		44 52 59	31	69
3	3	17	62	32	70
4	6	18	10	33	71
5	7	19	20	34	75
6	8	20	21	35	77
7	9	21	22	36	78
8	13	22	41	37	79
9	24	23	49	38	80
10	35	24	56	39	83
11	43	25	62	40	85
12	45	26	63	41	86
13	51	27	64	42	89
14	52	28	65	43	90
15	58	29	66	44	91

आयारंग सुत्तं (आचारांग सूत्र), सम्पादक मुनि जम्बूविजय (श्री महावीर जैन विद्यालय बम्बई) 1976

चयनिका क्रम	आचारांग सूत्र-क्रम	चयनिका क्रम	आचारांग सूत्र-क्रम	चयनिका क्रम	आचारांग सूत्र-क्रम
45	93	68	127	91	162
46	97	69	129	92	167
47	98	70	130	93	169
48	101	71	131	94	170
49	103	72	132	95	171
50	104	73	133	96	172
51	106	74	134	97	176
52	107	75	140	98	180
53	108	76	141	99	185
54	109	77	142	100	189
55	110	78	144	101	196
56	111	79	145	102	202
57	115	80	146	103	254
58	116	81	147	104	258
59	117	82	148	105	260
60	118	83	149	106	262
61	119	84	152	107	263
62	120	85	153	108	265
63	121	86	154	109	266
64	123	87	155	110	273
65	124	88	157	111	274
66	125	89	159	112	278
67	126	90	161	113	279

चयनिका क्रम	आचारांग सूत्र-क्रम	चयनिका क्रम	आचारांग सूत्र-क्रम	चयनिका क्रम	आचारांग सूत्र-क्रम
114	280	120	295	126	314
115	281	121	296	127	315
116	282	122	302	128	321
117	283	123	305	129	322
118	285	124	312		
119	286	125	313		

सहायक पुस्तकें एवं कोश

1. आयारंग सुत्तं : सम्पादक : मुनि जम्बूविजय (श्री महावीर जैन विद्यालय, बम्बई)

2. आयारो : सम्पादक : मुनि नथमल (जैन विश्व भारती, लाडनूं)

3. आचारांगसूत्र : सम्पादक : मधुकर मुनि श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर, (राजस्थान)

4. समता दर्शन और व्यवहार : आचार्य श्री नानालालजी महाराज (श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर)

5. जैन-आगम साहित्य : मनन और मीमांसा : देवेन्द्र मुनि (तारक गुरु ग्रन्थमाला, उदयपुर)

6. समणसुत्तं : सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी

7. हेमचन्द्र प्राकृत व्याकरण भाग 1–2 : व्याख्याता श्री प्यारचंदजी महाराज (श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, मेवाड़ी बाजार, ब्यावर, (राजस्थान)

8. प्राकृत भाषाओं का व्याकरण : डा. आर. पिशल (बिहार-राष्ट्र-भाषा-परिषद्, पटना)

9. अभिनव प्राकृत व्याकरण : डा. नेमिचन्द्र शास्त्री
(तारा पब्लिकेशन, वाराणसी)

10. प्राकृत भाषा एवं साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डा. नेमिचन्द्र शास्त्री
(तारा पब्लिकेशन, वाराणसी)

11. प्राकृत मार्गोपदेशिका : पं. बेचरदास जीवराज दोशी
(मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)

12. संस्कृत निबन्ध-दर्शिका : वामन शिवराम आप्टे
(रामनारायण बेनीमाधव, इलाहाबाद)

13. प्रौढ़-रचनानुवाद कौमुदी : डा. कपिलदेव द्विवेदी
(विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी)

14. पाइअ-सद्द-महण्णवो : पं. हरगोविन्ददास त्रिकमचन्द सेठ
(प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी)

15. संस्कृत-हिन्दी-कोश : वामन शिवराम आप्टे
(मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली)

16. Sanskrita-English Dictionary M. Monier Williams
(Munshiram Manoharlal, New Delhi)

17. बृहत् हिन्दी कोश : सम्पादक : कालिका प्रसाद आदि
(ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस)